गद्योपहार

III

गद्योपहार

III

(*Hindi*)
GADYOPAHAR - III
Prose Collection

Compiled by
a committee appointed by
University of Kerala

Printed at
S B Press
Trivandrum

Published 1979

Price Rs. 2.25

Published by
Chemmanam Chacko
Director
Department of Publications
University of Kerala
Trivandrum

गद्योपहार
III

प्रकाशन विभाग
केरल विश्वविद्यालय
तिरुवनन्तपुरम्
१९७९

Compiled by
The Board of Studies in Hindi (Pass)
University of Kerala

मुद्रण:

एस वी मुद्रणालय, तिरुवनन्तपुरम

वक्तव्य

केरल विश्वविद्यालय से हिन्दी पाठ्य पुस्तकों को प्रकाशित करने की योजना में गद्योपहार का यह तीसरा संकलन है। हिन्दी गद्य की प्रमुख तथा लोकप्रिय विधाओं का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचनाओं को इस में सम्मिलित किया गया है। सामग्री का चयन बड़ी सावधानी के साथ किया गया है। दोष अगर कहीं दिखाई दे तो कृपया सूचित करें।

जिन लेखकों और प्रकाशकों ने अपनी स्वत्व संरक्षित रचनाओं को इस में सम्मिलित करने की अनुमति दी हैं, उन के हम आभारी हैं।

अध्यक्ष
संपादक समिति

विषय सूची

उनकी उन्नति करना और उन गुणों को अपने जीवन का भाग बना लेना हर एक हिन्दुस्तानी का कर्तव्य है। हम दूसरे देशों के अच्छे गुणों को भी जरूर अपनाने की कोशिश करें, मगर अपने देश के गुणों को तो न भूलें।

'हम हिन्दुस्तानी बनें' यह सन्देश हमें हिन्दुस्तान के हर एक बच्चे, जवान और बूढ़े तक पहुंचाना चाहिए। हम गुलामी के कारण अपने आपको और जातियों से नीचा समझने लगे हैं। इसलिए अब आजाद होकर हमें सब से पहले अपने मन और हृदय को दीनता के गड्ढे से निकालना होगा।

हम गावों की पुरानी बातें छोड़कर पश्चिम के देशों की ओर जा रहे हैं। अपने हाथों से काम करने के बजाय मशीनों के दीवाने हो गये हैं। आखिर इन सब बातों का फल क्या होगा? वही जो आज यूरोप में हो रहा है खून की नदियाँ बहाकर मनुष्यों की भयंकर बरबादी!

हम अपनी भाषाओं को तुच्छ समझकर अंग्रेजी के दीवाने हो गये हैं। अंग्रेजी में ही हम आपस में बोलना पसन्द करते हैं, चाहे कितनी ही भद्दी अंग्रेजी क्यों न बोली जाय। अंग्रेजी भाषा अच्छी है, उस में साहित्य भी अच्छा है। मगर इसका यह मतलब नहीं हम अपनी मातृभाषा या राष्ट्र-भाषा की जगह अंग्रेजी को ही सीखने की कोशिश करें। ऐसा न कभी हुआ है, और न हो सकता है। अगर हम अंग्रेजी को जरूरत से ज्यादा अपनाने का इरादा न छोडेंगे, तो हम संसार के सामने अपनी मूर्खता का ही प्रदर्शन करेंगे।

हम एक बडी जाति के छोटे आदमी हैं, हमने अपने देश को अपनी सहूलियत केलिए छोटे छोटे टुकडों में बांट लिया है। जात-पांत और धर्म के हिसाब से हम बहुत से हिस्सों में बंट गये हैं। मगर यह ढंग स्वाधीनता बनाये रखने केलिए ठीक नहीं हो सकता। हमको भूल जाना होगा कि कौन ब्राह्मण है और कौन हरिजन है, कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान या ईसाई है। हम न भूलें कि इस देश का हर एक निवासी पहले हिन्दुस्तानी है, बाद में हिन्दू, मुसलमान ब्राह्मण या शूद्र है। अगर हम ऐसा न कर सके तो हमको स्वतंत्र रहने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। फिर हिन्दुस्तान को एक देश कहना भी भूल होगा।

इसलिए हमें चाहिए कि हम सब हिन्दुस्तानी बनने का यत्न करें।

कठिन शब्दार्थ

ढंग बदलना - रीति बदलना। दूसरे सांचे में ढालना - दूसरा आकार देना। बरबाद करना - नष्ट करना, ।तहजीब - सभ्यता। निकम्मा - useless। सहूलियत - सुविधा।

व्याख्या करें

१. आखिर इन सब बातों .... भयंकर बरबादी।

२. हम को भूल जाना ... शूद्र है।

उत्तर लिखें

१. पश्चिम का अनुकरण करने के संबंध में लेखक के क्या विचार हैं ? संक्षेप में लिखें।

२. मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के स्थान पर अंग्रेज़ी को प्रतिष्ठित करने से क्या हानि हो सकती है ?

३. इस निबंध का मूल संदेश क्या है ?

फौजी - सैनिक। प्रतिष्ठान - स्थान। जमाना - जड़ मजबूत करना, जमने में सहायक होना। हलचल - दौड़धूप, शोरगुल आदि; खलबली। नौचालन - Navigation, shipping। जुताई - जोतने का काम। बुआई - बोने का काम। तूफान- आंधी। कोहरा - Mist। आयनित - Ironized। माको-तरंग - Mycro waves क्षितिज - horizon। खर्चीला - Expensive। प्रसारित - extended, propagated। प्रेषित - Despatched, transmitted। बेहद - हद से ज्यादा, असीम।

व्याख्या करें

१. तब मौसम-समाचार आज की तरह कार्टूनों का विषय नहीं रह जाएंगे।

२. उपग्रह एक तरह से लटकती हुई मीनार है।

उत्तर लिखें

१. टेलिमिटरी का संक्षिप्त परिचय दें?

२. भूस्टेशन का क्या उपयोग है?

३. उपग्रह कितने प्रकार के होते हैं। मौसम उपग्रहों के बारे में आप क्या जानते हैं?

४. संचार उपग्रहों का संक्षेप में वर्णन करें।

५. 'उपग्रहों के उपयोग' नामक लेख का सारांश लिखें।

आँगन में बैंगन

हरिशंकर परसाई

श्री हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी के शीर्षस्थानीय व्यंग्यकारों में आते हैं। मुख्य रूप से उन्होंने कहानियां और निबंध रचे हैं। वर्तमान समय की समाज व्यवस्था, शासन प्रणाली, धर्मसंबंधी मान्यताएं आदि से वे अत्यंत असंतुष्ट हैं। इन के सुधार के एक उपकरण के रूप में उन्होंने व्यंग्य को ग्रहण किया है।

अपनी वस्तु के प्रति मोह मनुष्य केलिए बहुत ही स्वाभाविक है। परन्तु जब वह अत्यधिक हो जाता है तो वह हास्य का कारण बनता है। प्रस्तुत ललित निबंध में मुख्य रूप से इसी भाव को स्पष्ट किया गया है। वर्तमान समय की सरकार की शासन प्रणाली की असंगतियों पर भी इस में व्यंग्य किया गया है।

मेरे दोस्त के आँगन में इस साल बैंगन फल आये हैं। पिछले कई सालों से सपाट पड़े आँगन में जब बैंगन फल उठा तो ऐसी खुशी हुई जैसे बाँझ को ढलती उम्र में बच्चा हो गया हो। सारे परिवार की चेतना पर इन दिनों बैंगन सवार है। बच्चों को कहीं दूर पर बकरी भी दीख जाती है, तो वे समझते हैं कि वह हमारे बैंगन के पौधों को खाने के बारे में गंभीरता से विचार कर रही है। वे चिल्लाने लगते हैं। पिछले कुछ

दिनों से परिवार में बैंगन की ही बात होती है। जब भी जाता हूँ, परिवार की स्त्रियाँ कहती हैं—खाना खा लीजिए। घर के बैंगन बने हैं। जब वे 'भरे भटे' का अनुप्रास साधती हैं। तब उन्हें काव्यरचना का आनंद आ जाता है। मेरा मित्र भी बैठक से चिल्लाता है-'अरे भई! बैंगन बने हैं कि नहीं?' मुझे लगता है, आगे ये मुझसे 'चाय पी लीजिए' के बदले कहेंगी—'एक बैंगन खा लीजिए, घर के हैं।' और तश्तरी में बैंगन काटकर सामने रख देंगी। तब मैं क्या करूँगा? शायद खा जाऊँ, क्योंकि बैंगन चाहे जैसा लगे, भावना स्वादिष्ट होगी और मैं भावना में लपेटकर बैंगन की फाँक निगल जाऊँगा।

ये बैंगन घर के हैं और घर की चीज का गर्व विशेष होता है। अगर वह चीज घर में ही बनायी भी गयी हो, तो निर्माण का गर्व उसमें और जुड़ जाता है। मैंने देखा है, इस घर के बैंगन का गर्व स्त्रियों को ज्यादा है। घर और आँगन में जो है वह स्त्री के गर्व के क्षेत्र में आता है। इधर बोलचाल में पत्नी को 'मकान' कहा जाता है। उस दिन मेरा एक दोस्त दूसरे दोस्त को सपत्नीक भोजन के लिए निमंत्रित कर रहा था। उसने पूछा—'हाँ' यह तो बताइए आपका 'मकान' गोश्त खाता है या नहीं? पत्नी अगर 'मकान' कही जाती है, तो पति को 'चौराहा' कहलाना चाहिए। दोनों की पत्नियाँ जब मिलें तो एक का 'मकान' दूसरे के 'मकान' से पूछ सकता है—'बहन, तुम्हारा 'चौराहा' शराब पीता है या नहीं?

लोग पान से लेकर बीबी तक घर की रखते हैं। इसमें

बड़ा गर्व है और बड़ी सुविधा है। जो चाहा तब पान लगाकर खा लिया और जी हुआ तब पत्नी से लड़कर जीवन के कुछ क्षण सार्थक कर लिये। कुछ लोग मूर्ख भी घर के रखते हैं। और मेरे एक परिचित तो जुआड़ी भी घर के रखते हैं। दीवाली पर अपने बेटों के साथ बैठकर जुआ खेल लेते हैं। कहते थे—'भगवान की दया से अपने चार बेटे हैं, सो घर में ही जुआ खेल लेते हैं।'

घर की चीज आपत्ति से भी परे होती है। आदमी स्वर्ग से इसलिए निकाला गया कि उसने दूसरे के बगीचे का सेब खा लिया था। माना कि वह बगीचा ईश्वर का था, पर फिर भी पराया था। अगर वह सेब उसके अपने बगीचे का होता, तो वह एतराज करने वाले से कह देता—'हाँ, हाँ, खाया तो अपने बगीचे का ही खाया। तुम्हारा क्या खा लिया ?' विश्वामित्र का वैसा मामला अगर घर की औरत से होता, तो तपस्या भंग न होती। वे कह देते—'हाँ जी, हुआ। अगर वह हमारी औरत है। तुम पूछने वाले कौन होते हो ?' अगर कोई अपनी स्त्री को पीट रहा हो और पड़ोसी उसे रोके, तो वह कैसे विश्वास से कह देता है—'वह हमारी औरत है। हम चाहें उसे पीटें, चाहें मार डालें। तुम्हें बीच में बोलने का क्या हक है।' ठीक कहता है वह। जब वह कद्दू काटता है, तब कोई एतराज नहीं करता, तो औरत को पीटने पर क्यों एतराज करते हैं ? जैसा कद्दू वैसी औरत। दोनों उसके घर के हैं। घर की चीज में यही निश्चिन्तता है। उसमें मजा भी विशेष है। बैंगन चाहे बाजार के बैंगन

से घटियाँ हों, पर लगते अच्छे स्वादिष्ट हैं। घर के हैं न। मैंने लोगों को भयंकर कर्कशा को भी प्यार करते देखा है, क्योंकि वह घर की औरत है।

वैसे मुझे यह आशा नहीं थी कि यह मेरा दोस्त कभी आँगन में बैंगन का पौधा लगायेगा। कई सालों से आँगन सूना था। मगर मैं सोचता था कि चाहे देर से खिले, पर इस आँगन में गुलाब, चम्पा और चमेली के फूल ही खिलेंगे। बैंगन और भिंडी जैसे भोंड़े पौधे को वह अपने आँगन में जमने नहीं देगा। पर इस साल जो नहीं होना था, वही हो गया। बैंगन लगा गया। और वह रुचि से खाया भी जाने लगा। मेरे विश्वास को यह दोस्त कैसे धोखा दे गया। उसने शायद घबरा कर बैंगन लगा लिया। बहुत लोगों के साथ ऐसा हो जाता है। गुलाब लगने के इंतजार में साल गुजारते रहते हैं और फिर घबरा कर आँगन में बैंगन या भिंडी लगा लेते हैं। मेरे एक परिचित ने इसी तरह अभी एक शादी की है—गुलाब के इंतजार से ऊबकर बैंगन लगा लिया है।

लेकिन इन मित्र की सौंदर्य-चेतना पर मुझे भरोसा था। न जाने कैसे उसके पेट से सौंदर्य-चेतना प्रकट हो गयी। आगे हो सकता है, वह बेकरी की स्थापत्यकला का श्रेष्ठ नमूना मानने लगे और तंदूरी रोटी की भट्टी में उसे अजंता के गुफा-चित्र नजर आयें।

इसे मैं बर्दाश्त कर लेता। बर्दाश्त तब नहीं हुआ, जब परिवार की एक तरुणी ने भी कहा—'अच्छा तो है। बैंगन खाये भी जा सकते हैं'। मैंने सोचा, हो गया सवनाश। सौंदर्य,

कोमलता और भावना का दिवाला पिट गया। सुंदरी गुलाब से ज्यादा बैंगन को पसंद करने लगी। मैंने कहा—'देवी, तू क्या उसी फूल को सुंदर मानती है जिसमें से आगे चलकर आधा किलो सब्जी निकल आए। तेरी जाति कदंब के नीचे खड़ी होने वाली है, पर तू शायद हाथ में बांस लेकर कटहल के नीचे खड़ी होगी। पुष्पलता और कद्दू की लता में क्या तू कोई फर्क नहीं समझती? तू क्या वंशी से चूल्हा फूँकेगी? और क्या वीणा के भीतर नमक-मिर्च रखेगी?

तभी मुझे याद आया कि अपने आँगन में तो कुछ भी नहीं है। दूसरे पर क्या हँसूँ? एक बार मैंने गेंदे का पौधा लगाया था। यह बड़ा गरीब, सर्वहारा फूल होता है। कहीं भी जड़ें जमा लेता है। मैंने कहा—'हुजूर अगर आप जम जाएँ और खिल उठें, तो मैं गुलाब लगाने की सोचूँ। मगर वह गेंदा भी मुरझाकर सूख गया। उसका डंठल बहुत दिनों तक जमीन में गड़ा हुआ मुझे चिढ़ाता रहा कि गेंदा तो आँगन में निभ नहीं सका, गुलाब रोपने की महत्त्वाकांक्षा रखते हो। और मैं उसे जवाब देता—'अभागे, मुझे ऐसा गेंदा नहीं चाहिए जो गुलाब का नाम लेने से ही मुरझा जाय। गुलाब को उखाड़ कर वहाँ जम जाने की जिसमें ताकत हो, ऐसा गेंदा मैं अपने आँगन में लगने दूँगा। मेरे घर के सामने के बंगले में बनी मेंहदी की दीवार-सी उठी है। इसकी टहनी कहीं भी जड़ जमा लेती है। इसे ढ़ोर भी नहीं खाते। यह सिर्फ सुंदरियों की हथेली की शोभा बढ़ाती है

और इसीलिए इस पशु तक केलिए बेकार पौधे की रूमानी प्रतिष्ठा लोक-गीतों से लेकर नयी कविता तक में है। नेल-पालिश के कारखानों ने मेंहदी की इज्जत अलबत्ता कुछ कम कर दी है। तो मैंने मेंहदी की कुछ कलमें आँगन में गाड़ दीं। दो-तीन दिन बाद आवारा ढोरों ने उन्हें रौंद डाला। मैं दुखी था। तभी अखबार में पढ़ा कि किसी 'डाइड्रो इलेक्ट्रिक प्लांट' का पैसा इंजीनियर और ठेकेदार खा गये और उसमें ऐसी घटिया सामग्री लगायी कि प्लाण्ट फूट गया और करोड़ों बरबाद हो गये। जो हाल मेरे मेंहदी के 'प्लांट' का हुआ, वही सरकार के उस बिजली के 'प्लांट' का हुआ—दोनों को उजाड़ू ढोरों ने रौंद डाला। मैंने इस एक ही अनुभव से सीख लिया कि 'प्लांट' रोपना हो तो उसकी रखवाली का इंतजाम पहले करना। भारत सरकार से पूछता हूँ कि मेरी सरकार आप कब सीखेंगी? मैं तो अब 'प्लांट' लगाऊँगा, तो पहले रखवाली केलिए कुत्ते पालूंगा। सरकार की मुश्किल यह है कि उसके कुत्ते वफादार नहीं हैं। उनमें से कुछ आवारा ढोरों पर लपकने के बदले, उसके आसपास दुम हिलाने लगते हैं।

फिर भी भारत सरकार के प्लांट तो जम ही रहे हैं और आगे जम जायेंगे। उसके आँगन की जमीन अच्छी है और। 'प्लांट' सींचने को ४५ करोड़ लोग तैयार हैं। वे प्लांट भी उन्हीं के हैं। सरकार तो सिर्फ मालिन है।

मेरे इस आँगन का अभी कुछ निश्चित नहीं है। बगल के मकान के अहाते से गुलाब की एक टहनी, जिस पर बड़ा-स

फूल खिलता है, हवा के झोंके से दीवार पर से गर्दन निकाल कर इधर झाँकती है। मैं देखता रहता हूँ। कहता हूँ—'तू ताक चाहे झाँक। मैं इस आँगन में अब पौधा नहीं रोपूँगा। यह अभागा है। इसमें बरसाती घास के सिवा कुछ नहीं उगेगा। सभी आँगन फूल खिलने लायक नहीं होते'। 'फूलों का क्या ठिकाना'। वे गंवारों के आँगन में भी खिल जाते हैं। एक आदमी को जानता हूं, जिसे फूल सूँघने की तमीज नहीं है। पर उसके बगीचे में तरह-तरह के फूल खिले हैं। फूल भी कभी बड़ी बेशर्मी लाद लेते हैं और अच्छे खाद पर बिक जाते हैं।

मेरा एक मित्र कहता है कि 'तुम्हारे आँगन में कोमल फूल नहीं लग सकते। फूलों के पौधे चाहे किसी घटिया तुकबंद के आँगन में जम जायें, पर तुम्हारे आंगन में नहीं जम सकते। वे कोमल होते है, तुम्हारे व्यंग्य की लपट से जल जायेंगे। तुम तो अपने आँगन में बबूल, भटकटैया और धतूरा लगाओ। ये तुम्हारे बावजूद पनप जायेंगे। फिर देखना कौन किसे धमता हैं—तुम बबूल को या बबूल तुम्हें? कौन किसे बेहोश करता है—धतूरा तुम्हें या तुम धतूरे को।

कठिन शब्दार्थ

भोंडा - भद्दा। तंदूरी रोटी - तंदूर (मिट्टी का बडा पात्र) में बनी हुई रोटी। सर्वहारा - साधारण। कलम - पेड की टहनी जो दूसरी जगह लगाने केलिए काटी जाय।

व्याख्या करें

१. आदमी स्वर्ग से इसलिए निकाला .... कराया था।

२. सरकार की मुश्किल यह है कि उसके कुत्ते .... दुम हिलाने लगते हैं।

३. फिर देखना कौन किसे चुकता है...धतूरे को।

उत्तर लिखें

१. "आंगन में बैंगन" में अभिव्यक्त भावना कौन सी है ? इस में बैंगन किस भावना का प्रतिनिधित्व करता है ?

२. इस में लेखक ने किन किन बातों अथवा प्रसंगों पर व्यंग्य किया है।

३. इस में लेखक मुख्य रूप से क्या समझाना चाहते हैं ?

झींगुर

श्री विनोद प्रभाकर

[हिन्दी मे वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति हो रही है। अनेक वैज्ञानिक हिन्दी में लिखने लगे हैं। भारतीय भाषा यूनिट वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की ओर से प्रकाशित 'विज्ञान प्रगति' पत्रिका इस उद्देश्य की पूर्ति करती है। प्रस्तुत लेख 'विज्ञान प्रगति' के बाल विशेषांक से लिया हुआ है।]

वर्षा के शुरु होते ही बादलों की उमड़-घुमड़ और बिजली की कड़क सुनाई पड़ते ही बहुत से जीव-जन्तु आनंदित हो कर अपनी मदमस्त तानें छोड़ देते है। 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' तथा कुहू-कुहू की सुरीली आवाजें वातावरण में रस घोल देती हैं। ऐसे में मेढ़कों की टर्र-टर्र और झींगुरों की झंकार बिल्कुल अलग होती है और एक अलग ही 'रस' की सृष्टि करती हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने तो मेंढ़कों की आवाज के बारे में लिखा हैं—'बेद पढ़हि जब बटु समुदाई' अर्थात मेंढ़कों की आवाज ऐसी लगती है मानों ब्राह्मणों के समूह बेद पाठ कर रहे हों।

बरसात में झींगुरों की भरमार हो जाती है। उस समय इनकी आवाज अक्सर सुनाई पड़ती रहती है। आवाज तेज होती है तो कानों को अच्छी नहीं लगती। हाँ मन्द आवाज

को सुनने में संगीत का सा आनन्द अवश्य आता है। अपने इस फन में झींगुर माहिर होता है। वह आवाज के स्तर को इस सीमा तक नियंत्रित कर लेता है कि पता ही नहीं चलता कि ध्वनि कहाँ और किस दिशा से आ रही है। सुननेवाला उसकी कला से चाहे कितना ही परेशान होता रहे ये महाशय घर के कोने में छिपे अपनी 'संगीत कला का अभ्यास' करते रहते हैं।

संगीत की तेज और धीमी आवाज झींगुर अपनी टांगों को एक दूसरे से रगड़कर पैदा करता है। दर असल इनकी टांगें रेती की तरह दाँतेदार होती हैं और सारंगी के गज का काम करती हैं। जिस समय इसे अपनी तान छेड़नी होती है यह अपने पैरों को आगे-पीछे करना शुरू कर देता है। इससे पैरों की रेती के दांत एक दूसरे से रगड़ खाते हैं और आवाज पैदा होती है। स्वर का नियंत्रण यह अपने शरीर की देशा बदल--बदलकर करता है। अपने स्वर को यह एकदम से नहीं चढ़ाता, बल्कि शहनाई की तरह धीरे--धीरे बढ़ाता है और फिर तान नहीं तोड़ता। अपने पैरों के सारंगीवादन में झींगुर किसी भी कुशल से कुशल सारंगीवादक से कम नहीं होते। पर झींगुर की ऐसी बहुत सी किस्में हैं जो आवाज पैदा ही नहीं कर सकतीं। वैज्ञानिकों के अनुसार झींगुर की २०० से भी अधिक अलग--अलग किस्में (स्पीशिज) हैं। इन सबके मूंछों के बाल (एन्टेना) लम्बे और पिछली टांगों मजबूत होती हैं। एक अमेरिका जीव--वैज्ञानिक के अनुसार तो झींगुर 'संवाद' भी बोलते हैं। अगर इनको ध्यान से सुना जाए तो इनके स्वर के उतार--चढ़ाव से पता चल सकता है, ये किस स्थान के निवासी हैं।

झींगुर की लम्बाई आध इंच से डेढ़ इंच तक होती है और शरीर चपटा होता है। इसका सिर बड़ा और शरीर का रंग मटमैला-भूरा होता है। अगले परों का कुछ हिस्सा तो पीठ पर फैला और कुछ पेट से चिपका रहता है। अगली टांगों के ऊपरी भाग पर टिड्डियों की तरह सुनने के अंग होते हैं। पीठ के पिछले हिस्से में दुम की तरह दो अंग निकले होते हैं। पिछली टांगें थोड़ी लम्बी रहती हैं जिनसे यह मेंढ़क की तरह कूद-कूद कर चलता है।

झींगुर घास-पात और छोटे मोटे कीड़े खानेवाला जीव है। इसके रहने का कुछ निश्चित ठिकाना नहीं। कुछ गहरा बिल खोदकर रहते हैं तो कुछ अपना डेरा पेड़ों और झाड़ियों के बीच रखते हैं। बिल बनाकर रहनेवाले झींगुर अक्सरा शाकाहारी होते हैं। झाड़ी के बीच रहनेवाले झींगुर छोटे कीड़े खाकर भी अपना गुज़ारा कर लेते हैं। वे ज्यादातर रात को बाहर निकलना पसन्द करते हैं।

झींगुर फसल को बहुत नुकसान पहुँचा सकता है। अमेरिका के ऊटा प्रदेश में एक बार झींगुरों ने इतनी फसल नष्ट कर दी कि अकाल पड़ने का खतरा हो गया।

ये घरों में आ जाते हैं। तस्वीर, अलमारी, संदूक और दूसरे सामानों के पीछे, जहाँ गंदगी रहती है ये अपना अड्डा जमा लेते हैं और अक्सर कपड़े, चमड़े आदि की चीजों का सफाया करके काफी नुकसान पहुँचाते हैं।

झींगुर प्रायः सभी जगह पाए जाते हैं। सारी दुनियाँ में इनकी अनेक जातियाँ फैली हुई हैं। हमारे यहाँ इनकी

मुख्यतः दो जातियाँ दिखाई पड़ती हैं; एक काला और दूसरा भूरा झींगुर। इनमें रंग और कद में थोड़ा फर्क जरूर होता है, पर आदतें एक जैसी होती हैं। काला झींगुर भूरे से कुल मोटा होता है।

चीन में तो पहले से ही झींगुरबाजी को एक राष्ट्रीय खेल माना जाता रहा है। पहले वहाँ बढ़िया नस्ल के झींगुर पाले और सधाये जाते थे। उनकी 'शिक्षा' और खाने का पूरा ध्यान रखा जाता था जिससे वे लड़ते समय अखाड़े में अपने प्रतिद्वन्द्वी को 'चित' करके छोड़ें, खुद न खा जाएं। समझा जाता है कि बर्मा आदि देशों में तो इनको बड़े चाव से खाया भी जाता है।

कठिन शब्दार्थ

उमडना घुमडना - घूम घूम कर फैलना। कड़क - कड़कड़ाहट का शब्द, वज्र, तड़प, दपेट। छेड़ देना - कोई काम आरंभ करना बजाने के लिए बाजे में हाथ लगाना। भरमार - बहुत ज़्यादा, अत्यन्त अधिकता। फन - गुण, विद्या, खूबी। महिर - निपुण, कुशल। दर असल - वास्तव में, सचमुच। शहनाई- एक तरह का बाजा जिसका उत्तर भारत में उपयोग किया जाता है। किस्म - प्रकार, भेद, ढंग, चाल, तरह। चपटा होना - बैठा या धंसा हुआ। टिड्डी - एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा जो लाखों की संख्या में बहुत बड़ा दल बांधकर चलता है और पेड़-पौधों को बड़ी हानि पहुँचाती है। बिल - ज़मीन के अन्दर खोदकर बनाया हुआ जीवजंतुओं के रहने का स्थान, विवर छेद।

डेरा – पड़ाव, टिकाव। अकाल - दुर्भिक्ष, दुष्काल, अनुपयुक्त समय। खतरा – भय, आशंका। अड्डा – ठहरने (टिकने) का स्थान। भूरा रंग – मिट्टी का सा रंग, खाकी रंग। नस्ल – वंश, जाति।

व्याख्या करें

१. 'पी कहाँ' 'पी कहा' तथा कुहू–कुहू की सुरीली आवाज़ें वातावरण में रस घोल देती है।

२. गोस्वामी तुलसीदास ने तो मेंढकों की आवाज़ के बारे में लिखा है– 'वेद पढ़हिं जनु बटू समुदाई' अर्थात मेंढकों की आवाज़ ऐसी लगती है मानो ब्राह्मणों के समूह के समूह वेद पाठ कर रहे हों।

३. अगर इनको ध्यान से सुना जाए तो इनके स्वर के उतार-चढ़ाव से पता चल सकता है, ये किस स्थान के निवासी हैं।

हम हिन्दुस्तानी बनें

श्रीमन्नारायण

[श्रीमन्नारायण गांधीजी के अनुयायी है। गांधीवाद के विशेषज्ञों में उनकी गणना है। भारत की एकता और उन्नति केलिए वे निरंतर प्रयत्नशील रहे हैं। हिन्दी साहित्य के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण हैं। बड़े नेता और राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में भी उन्होंने यश पाया है।

उन्होंने इस निबंध में हमें समझाया है कि विदेशी सभ्यता और संस्कृति का अंधानुकरण करने से भारत की अवनति हो रही है। पश्चिमी सभ्यता के अच्छे पहलुओं को हम स्वीकार कर सकते हैं। लेकिन भारतीयता को हमें कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए। यही उनका सन्देश है। उन की भाषा प्रसादगुण से युक्त है]

हम ने पश्चिम के देशों की बहुत दिन तक नकल कर ली है। हमने उनके रहन, सहन आचार–विचार का बहुत अनुकरण किया है। अपनी भाषा को भूलकर विदेशी भाषा को दिल खोल कर अपनाया है। अपने देश के गौरव को नीचा समझकर दूसरे देशों की ओर लोभ की नजर से देखा है। मगर अब हमें अपना ढंग बदलना होगा। हमें अपने जीवन को दूसरे साँचे में ढालना होगा। हम को दूसरे लोगों की नकल करना छोड़कर अपनेपन ढुंढना होगा। अपने देश के गुणों को समझकर उन्हें अपने जीवन

का भाग बनाना होगा। अगर थोड़े में कहा जाय, तो हमें हिन्दुस्तानी बनना होगा।

इसका यह मतलब नहीं कि हम दूसरे देशों से घृणा करने लगें और उनकी अच्छी अच्छी बातों को प्राप्त करने की कोशिश न करें। इसका यह भी मतलब नहीं कि हम अपने देश की बुराइयों को भी अच्छा समझ कर उन्हें सुधारने का प्रयत्न न करें। ऐसा करने से तो हम अपने आपको और अपने देश को बरबाद कर देंगे। हिन्दुस्तानी बनने के ये अर्थ हैं कि हम अपने रीति-रिवाजों को, आचार-विचारों को पूर्ण रूप से समझने की कोशिश करें। मगर अपनी संस्कृति या तहजीब को भूल कर या निकम्मी समझ कर दूसरे देशों की नकल करते-करते अपनेपन को न खो बैठें।

दुनियाँ की हर एक वस्तु में कुछ-न-कुछ विशेष गुण होता है। यह बात, आदमी तो आदमी, जानवरों और पौधों में भी पाई जाती है। यह अच्छी भी है। अगर एक बाग में सभी फूल एक-से ही हों, तो कुछ शोभा न रहेगी। मगर बगीचे में तरह तरह के फूल हों तभी हर एक फूल अपनी अपनी निराली खुशबू फैलाकर लोगों को खुश करता है। इस तरह हर एक देश की सभ्यता या तहजीब में कुछ-न-कुछ खास गुण होता है। उसका विकास करना जरूरी है। नहीं तो इसका यह मतलब हो जाता है कि उस देश के निवासी ईश्वर के दिये हुए गुण को ठुकराते हैं। हमारे हिन्दुस्तान में भी कुछ खास गुण पाये जाते हैं। उन्हें समझकर

कठिन शब्दार्थ

ऊलजलूल – असंबद्ध। दकियानूसी – अत्यंत प्राचीन। अहमक – मूर्ख। हिमायत - मदद। कन्नी कतराना – किसी बात से विचलित होना। गुनाह – पाप।

व्याख्या करें:-

१. सच है बाबूजी, गरीब लाख ईमानदार .... चन्दे के नाम पर सहस्रों।

२. मैं उन आदमियों से नहीं जो कहते हैं .... वही कहता हूँ।

३. जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है .... कन्नी न कतराये।

उत्तर लिखें

१. इस एकांकी में सेठजी के किन किन आचरणों पर व्यंग्य किया गया है?

२. इस में सेठजी, किन किन वर्गों के लोगों के अधिकारों की रक्षा करते दिखाए गये हैं?

३. कथनी और करनी का मेल बिठाने में सेठजी कहां तक सफल हुए हैं?

४. इस एकांकी का सब से अधिक मार्मिक प्रसंग कौन सा है?

प्रशंसा के चक्कर में फँसकर

गोपाल प्रसाद व्यास

[गोपाल प्रसादव्यास उच्चकोटि के कवि लेखक और पत्रकार है। हिन्दी भाषा और साहित्य से सबद्ध कई संस्थाओं से इनका निकट का सबध रहा है। व्यंग्य-विनोद के प्रति उन में विशेष आस्था है जो उनकी प्राय:सभी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। "अजी सुनो", "चले आ रहे हैं," "कुछ सच, कुछ झूठ" आदि में संग्रहीत उनकी रचनाओं में शिष्ट हास्य के सुन्दर प्रसंग वर्तमान है।

प्रस्तुत निबंध में लेखक ने प्रशंसा के प्रति अत्यधिक मोह रखनेवालों की हंसी उडाई है। प्रशंसा किस को अच्छी नहीं लगती। परन्तु अति से हानि की ही सभावना है। इसी को एक मार्मिक घटना द्वारा लेखक ने इस में प्रस्तुत किया है।]

मुझे बहुत-सी चीजें प्रिय हैं। कहें तो कुछ के नाम बताऊँ? गुलाब का इत्र, जुही की माला, रेशम का कुर्ता, खोये की बर्फी, दही की गुझियाँ, असली घी की जलेबी और मगही पान मिल जाये तो समझ लीजिये-उहाँ छाड़ि इहि बैठे वैकुंठा।

ब्राह्मण हूं, पर निरा पेटू नहीं। मुझे अपनी पुस्तकें भी कम प्रिय नहीं। लेकिन पुस्तकों से प्यार है, इसके यह

अर्थ भी नहीं कि मैं संसारी नहीं। बीबी-बच्चे, घर-बार सभी से तो मुझे प्यार है।

फिर भी एक वस्तु ऐसी बच ही जाती है, जिसकी इन सब चीजों से कोई तुलना नहीं। वह कोई बहुत बडी वस्तु नहीं। एक छोटी-सी बात है। यही अपनी मामूली सी प्रशंसा। बस, यही एक चीज ऐसी है जिसे सुनने केलिए मैं क्या नहीं कर सकता, क्या नहीं सह सकता?

खाना न दीजिये, कपडा न दीजिये, रुपया-रोजगार न दीजिये, लेकिन कृपा करके दिल खोलकर झूठी ही सही, मेरी प्रशंसा किये जाइये, मैं आपकी जूतियों का गुलाम हूँ। उस हालत में मुझ जैसा बेदाम का नौकर, बे-उजर चाकर आप कहीं खोजे भी न पाइयेगा। चालीस के ऊपर आयु होती आई। सैकडों ही दोस्त बनें। लेकिन टिके वही, जो मेरी प्रशंसा करते रहे। जिसने खरी कही, मैंने उससे अपनी राह गही। क्या बताऊँ, जानता सब हूँ, मगर इस मामले में मानता किसी की नहीं। खरी बात कह सबसे सकती हूं। लेकिन खरी सुनकर मुझे प्रसन्नता हर्गिज नहीं होती। असर मुझपर मीठी बात का ही होता है। इसे लाचारी कहिये, कमजोरी कहिये, चाहे तो बुराई भी कह लीजिये। बात यह मुझमें है। मैं इसे इनकार नहीं करता।

हिन्दुस्तान में सोने का बडा मोल है। लडाई समाप्त हुये एक जमाना हो गया, मगर इसके भाव गिरते ही नहीं। कहते हैं 'प्लाटिनम' का मूल्य सोने से भी बड़ा है। रत्न-जवाहरातों के क्या कहने। लेकिन मेरी दृष्टि में इन सबका

मूल्य प्रशंसा के दो मोठे शब्दों के मुकाबले तीन कौड़ी का भी नहीं।

इसीलिए मैं प्रशंसक के मूल्य को अच्छी तरह जानता हूँ। क्यों न जानूं? सरकारें भी तो प्रशंसकों के बल पर चलती हैं। सरकार क्या, भगवान को भी अगर प्रशंसकों को टोटा पड़ जाये तो उसकी भी बधिया बैठ जाय। तरह-तरह के लालच देकर, वह अपने गीत उनसे गवाया करता है। कवियों के साथ भी यही बात है। कवि लोग अन्न-जल पर थोड़े ही जीते हैं? ये तो प्रशंसा के पादप हैं। मिलती रहेगी तो खिलते रहेंगे नहीं, तो कुम्हलाते क्या देर लगती है। इसीलिए उस दिन रेल में जब मुझे मेरी रचनाओं के एक प्रशंसक अनायास ही मिल गये तो खुशी का ठिकाना न रहा।

हम लोग उस दिन गाजियाबाद से दिल्ली लौट रहे थे। गाड़ी में जो साहित्यचर्चा चली तो बात-बात में एक महोदय मेरा नाम जान गए। वह स्वयं मेरे पास खिसक आए। कहने लगे: 'धन्य भाग! वर्षों से आपका नाम पढ़ते-सुनते थे। बड़ी तमन्ना थी आपके दर्शनों की। क्या कमाल का लिखते हैं आप? आपकी रचनाओं को तो हमने अखबारों से काट-काट कर एक रजिस्टर में चिपका रखा है। आपकी पुस्तकों के सभी संस्करण हमारे पास हैं। मेरी पत्नी तो आपकी रचनाओं के पीछे समझिए, जैसे पागल है। और-तो और, मेरी छोटी मुन्नी भी आपकी कई कविताएँ कंठस्थ है।"

शब्द क्या थे मानो बूँद-बूंद से अमृत झर रहा था। यात्रा की सारी थकान, डिब्बे की ठेल-पेल और साहित्य-चर्चा से उत्पन्न उमस जैसे सब कुछ शीतल, तरल और क्या कहूँ रसमय हो चला। मेरे मन की बन्द कली जैसे खट करके खिल उठी।

बगल में बैठे अपने मित्रों की ओर मैंने जरा तनकर देखा और महसूस किया कि उनपर ही नहीं, इन अनजान मित्र की बातों का असर सारे डिब्बे पर बड़ा अनुकूल पड़ा है। कुछ ही सेकिंड में मैं उस डिब्बे का एक महत्व-पूर्ण व्यक्ति बन गया।

अपनी प्रशंसा सुनकर क्योंकि सज्जन पुरुष संकोच करने लगते हैं, मैंने भी वही किया। मैं विनयी हो आया, कहने लगा: "जी, मैं क्या हूँ। आप जैसे गुणीजनों को कुछ पसन्द आ जाय, मेरे लिए यही बहुत बड़ी बात है।"

"विनय बहुत बडी बात है। विनय बडों को ही शोभा देती है।" अनजान मित्र कहने लगे—"ज्ञानी ही सहनशील होते है। शिष्टता ओछों के बाँटे नहीं आती–ओछे बर्तन में तो पानी छलकता है। मैं हिन्दुस्तान के अनेक साहित्यकारों और कलाविदों से मिला हूं। मुंह देखी नहीं कहता, राम-राम उनमें यह बात कहाँ ? आपको तो देखकर ही ऐसा लगता है जैसे अपने परिवार के ही आदमी हैं।" कहते-कहते उन्होंने सिगरेट का पैकिट मेरी ओर बढ़ाया।

मैंने और भी विनम्र होकर हाथ जोड लिए। तो वह कहने लगे "और आप सिगरेट भी नहीं पीते ? तब और

क्या पीते होंगे ? लेकिन इतना मादक, इतना सरस चीजें आप लिखते कैसे हैं ? सच कहता हूँ कि मैं तो जब आपकी रचनाएँ पढ़ने लगता हूँ तो सुधबुध खो बैठता हूँ। अहा ! अभी परसों के सप्ताहिक में आपकी वह भ्रमर और कली वाली रचना पढ़ी थी ! क्या कहने है ? दिल बाग--बाग हो गया।

बातों का यह सिलसिला अभी और लम्बा चलता, मगर गाडी शाहदरा स्टेशन पार कर यमुना के पुल पर आ गई थी। दिल्ली जंक्शन आने ही वाला था।

बातों--बातों में ज्ञात हुआ कि मेरे मेहरबान दोस्त कलकत्ते में अपना कोई बड़ा व्यापार चलाते हैं। दो दिन के लिए किसी काम से राजधानी आए हैं। वह जिस होटल में ठहरने वाले थे उन्होंने उसका पता भी बताया और आग्रह किया कि मैं उनके यहाँ कम से कम एक बार चाय पीकर तो उन्हें अवश्य ही कृतार्थ करूँ।

दिल्ली में बसे 92 वर्ष से ऊपर हो गए। लेकिन अभी भी दिल्ली मुझसे कुछ दूर ही बनी हुई है। पुरखे कह गए हैं कि दिल्ली में आदमी को जरा सोच-समझकर चलना चाहिए। यहाँ लोगों से व्यवहार करते समय उन्हें बीस बार परखना चाहिए। इसीलिए कोई लाख कहे, मैं किसी को अपना घर नहीं दिखाता। मित्रलोग मेरी इस आदत से भली भाँति परिचित हैं। लेकिन कुछ अपनी आदत, कुछ पत्नी के अद्वैत स्वभाव और कुछ अल्प बचत योजना का असर कि मित्रों के उलाहने और अमित्रों के उलाहने और अमित्रों के ताने कभी मुझपर असर नहीं करते।

लेकिन इस बार की बात दूसरी थी, क्योंकि श्रीमतीजी मैके पधारी हुई थीं और अभी महीने की सिर्फ तीसरी ही तारीख थी। आपसे क्या छिपाऊँ, सबसे बड़ी बात यह कि उन गुणग्राहक मित्र की बातों से अभी मेरी पूरी तसल्ली भी नहीं हुई थी। परिणाम यह कि एक कदम गलत उठ गया। वैसे ऐसे मामलों में मैं उचित-अनुचित का जरा कम ही ख्याल रखता हूँ। लेकिन उस बार न जाने क्या हुआ कि उनके मुख से अपनी शराफत का गुणगान सुनकर मुझे यह उचित नहीं लगा कि अपने शहर में आए हुए एक दुर्लभ पारखी को अपने घर न बुलाकर खुद उनके किराए के होटल में चलकर चाय पीने की धृष्टता की जाय।

अगर मैं जल्दी न होता, या मुझे एक बार भी अपनी बात फिर से विचार करने का अवसर मिल जाता तो मैं कदापि वैसा नहीं करता। लेकिन गाडी स्टेशन पर ठहर गई थी और लोगों के चढ़ने-उतरने की रेल-पेल फिर से शुरू हो गई थी। इस गड़बड़ी में मैं फंस गया। और क्या बताऊँ, जो अब तक कभी न किया था, वह कर ही डाला। यानी मैंने उन महाशय को अपने घर का पता बता दिया। बडे तपाक से मैं ने कहा: "भला, यह भी कोई बात हुई? आप हमारे शहर में आएँ, और उलटे हम आपके मेहमान बनें। लाख दिल्ली अब पुरानी नहीं रही, लेकिन ऐसा भी क्या हुआ? आपको मेरा घर पवित्र करना ही पडेगा।"

थोडे शिष्टाचार के बाद उन्होंने मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन मैं ने उनके स्वागत की तैयारी की।

पत्नी थी नहीं। नौकर घर में हम लोग खुद ही होते हैं। इसलिए, उस दिन मैं सुबह तड़के ही उठ बैठा। सारा घर साफ करके आइने माफिक चमका दिया। चीज़ों को करीनों में जमाया। बाज़ार से कुछ नमकीन, कुछ मीठा कुछ फल लाकर रख छोडे। कछ पुड़िया पानों की भी पहले से ही ले छोड़ी। पास के होटल वाले से कह आया कि ठीक ८ बजे किसी को भेजकर चाय केलिए पुछवा ले।

मित्र घड़ी के टाइम पर टैक्सी से उतरे। टैक्सी का बिल चुकाने लगा तो उन्होंने हाथ पकड़ लिया। घर में घुसते ही उन्होंने बच्चों के बारे में पूछा। यह बताने पर कि वे सब तो अपने ननिहाल गए हैं, एक सद्‌गृहस्थ की भांति उन्हें बडी निराशा हुई।

सूने घर में हम लोग मेज़ों पर पैर फैला कर जम गए। हमें डर भी किसका था? न घर में पत्नी का, न बाहर सरकार का। हमने दाल-मोंठ से लेकर अणुबम तक पर विशेषज्ञों की भांति चर्चा की। छत्रों की अनुशासनहीनता से लेकर स्वेज-समस्या तक हमारी तीखी नज़र दौड गई। हमने दुनिया के सभी बुद्धिमानों को उस समय लगभग बुद्धू ही सिद्ध कर दिया।

हमारी बातचीत प्राय: साहित्य के आस-पास घूमती रही। शायद ही संसार का कोई कवि, लेखक या उपन्यासकार ऐसा बचा हो, जिसके गुण-दोषों का हमने उस दिन पर्दाफास न कर डाला हो।

मेरे मित्र की जानकारी अद्भुत थी। वह हर साहित्यिक की पुस्तकों के बारे में ही नहीं, उनकी आदतों, पसंदों और कपड़ों के बारे में भी पक्का पता रखते थे। किसकी किससे बनती है, किसकी किससे चलती है, किसने किसका कहाँ क्या चराया है, कौन कहाँ क्या तिकड़म कर रहा है, इस सबका उन्हें सही-सही पता था। बीच-बीच में रामायण के सम्पुट-पाठ की तरह वह प्रसंग और अवसर निकालकर मेरी रचनाओं की, मेरे स्वभाव और मीठे व्यवहार की भी लगे-हाथों तारीफ़ करते चलते थे।

मिठाई की मिठास उस दिन कैसी थी क्या बताऊँ? जब-जब वह महाशय मेरा गुणगान करते तब-तब मेरा नमकीन चीजों की सार्थकता पर विश्वास जमता जाता। फल सफल हो रहे थे। चाय आ रही थी और न जाने कहाँ समाई जा रही थी? मुझे लगा कि ये ७ घंटे जैसे ७ मिनटों में ही समाप्त हो गए। समझ की क्रूरता का मैंने उस दिन सही-सही अनुमान किया। उस दिन मैं ने जाना कि प्रियकथन श्रवण केलिए किस प्रकार दो कान ही काफी नहीं हैं।

काफी दूर तक मैं उन्हें छोड़ने गया। लौटा तो लगा कि मेरा मन भी कहीं बाहर ही छूट गया है। रात को बड़ी देर तक नींद नहीं आई। तुलसीदास की यह चौपाई उस दिन मुझे कई बार याद आई:

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता।।

पड़ा-पड़ा मैं यही सोचता रहा कि इसी प्रकार कोई सहृदय समालोचक मिल जाय तो मुझे व्यास, कालिदास, मिल्टन, शेक्सपीयर बनते अब देर नहीं लगती। सोते-सोते मुझे यह विश्वास भी हो गया कि लोग लाख ईर्ष्या करें मेरी कला को, साधना को, समझने वाले अब पैदा होने लगे हैं। मेरे महान् बनने में अब देर नहीं।

दूसरे दिन काफी देर गये मेरी आँख खुली। रात की प्रशंसा का खुमार अभी पूरा-पूरा नहीं उतरा था। मैं ने आइने में गौर से झाँककर बाल जरा सीधे किये। कमीज डालकर बाहर चाय पीने निकला तो याद आया, जेब खाली है। सोचा कुछ पैसे लेता चलूँ। कल की चाय का बिल भी चुकाना है।

लेकिन मेज की दराज खोली, तो सन्न रहा गया। वह अस्त-व्यस्त पडी थी। मनीबैग गायब था। दौड़कर दरवाजो पर गया तो देखा ताला-कुंजी सब अन्दर से ठीक तरह बन्द थे। जीना-खिड़की सब सही-सलामत थे। रात को तो सोने के बाद कोई आया नहीं। तब बटुआ क्या हुआ?

मेरी आँखों के सामने से प्रशंसा का परदा खर्र से खिसक गया। एक-एक करके मुझे कल शाम की सारी घटनायें याद आने लगीं। प्रशंसा मुझे काफी महँगी पड़ी थी। मेरे मेहरबान मित्र महीने भर का पूरा वेतन अपनी प्रशंसाओं के पारिश्रमिक वसूल कर ले गये थे।

भला ऐसे चतुर कहीं होटलों का पक्का पता बता देते हैं। चाय के जूठे बर्तन, चारों तरफ फैले सिगरेटों के

टुकड़े, फलों के छिलके, जूठी तश्तरियाँ मानो सब विद्रूप से मुँह बिचकाकर मुझसे पूछ रहे थे— 'कहिए महाशय, महाकवि बनने में अब कितनी देर है ?"

कठिन शब्दार्थ

रोजगार — नौकरी, पेशा। तमन्ना - कामना। ठेलपेल — धक्कम धक्का। दिल बाग बाग हो जाना। धृष्टता - अनुचित साहस, गुस्ताखी। अनुशासन - आदेश, हुक्म। खुमार — नशा। सही सलामत - भला-चंगा।

व्याख्या करें

१. ज्ञानी ही सहनशील ... पानी छलकता है।
२. भला, यह भी कोई बात .... पवित्र करना पड़ेगा।
३. चाय के जूठे ... महा कवि बनने में कितनी देर है।

उत्तर लिखें

१. प्रशंसा के चक्कर में फंसने पर लेखक को जो अनुभव प्राप्त हुए उनका वर्णन करें।
२. इस निबंध में लेखक मुख्य रूप से क्या समझाना चाहते हैं ? संक्षेप में लिखें।
३. प्रशंसा क्या होती है ? क्या उसका फल बुरा ही होता है ? लेखक ने उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उसके संबंध में आप के क्या विचार है।

उपग्रहों के उपयोग

डा. जगदीश लूथरा

[डा. जगदीश लूथरा, ट्राम्बे के भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के रसायन प्रभाग के वैज्ञानिक अधिकारी हैं। उनका जन्म ३० नवंबर १९३५ को पाकिस्तान स्थित साहीवाल में हुआ था। कुछ समय तक जोधपुर विश्वविद्यालय के जसवंत कालिज में व्याख्याता रहे। अमेरिका में भी कुछ समय तक वैज्ञानिक शोध में संलग्न थे। हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में वे व्यस्त हैं। भारत की कई प्रमुख पत्रिकाओं में उनके अनेक वैज्ञानिक लेख प्रकाशित हुए हैं। परमाणु ऊर्जा विभाग की त्रैमासिक पत्रिका "परमाणु" के संपादन मंडल में वे सदस्य हैं। उनका प्रस्तुत लेख वैज्ञानिक साहित्य की रचना में उनकी अभिरुचि प्रकट करता है।]

हजार से ज्यादा उपग्रह अभी तक छोड़े जा चुके हैं। इसमें से कई खत्म हो चुके हैं, कई अभी कार्यरत हैं, और कई तो अंतरिक्ष की गहराइयों में भटक गये हैं। उपग्रह भेजने का सिलसिला अभी जारी है और आगे भी जारी रहेगा। सवाल उठता है कि यह सारा प्रयास किसलिए ?

अंतरिक्ष में घूमता हुआ उपग्रह एक प्रकार से मंच का कार्य करता है। उस ऊँचाई से वह पृथ्वी का अवलोकन ऊपर से करता है और जानकारी इकट्ठी करके उसे पृथ्वी पर भेजता

है। ज्यादातर उपग्रह मानव-रहित होते हैं, परंतु उनके पास मशीनी आँखें होती हैं। ये मशीनी आँखें असल में विशेष उपकरण हैं, जो पृथ्वी के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं और उसे टेलिमीटरी विधि (दूरमापी) से पृथ्वी पर भेजते हैं। इन सूचनाओं को इकठ्ठा करने केलिए पृथ्वी पर भू-स्टेशन होते हैं। टेलिमीटरी का सबसे सरल उदाहरण है मोटर-कार में लगा हुआ रफ्तार बतानेवाल मीटर। इसकी मदद से ड्राइवर कार में बैठे-बैठे ही पता लगा सकता है कि कार का पहिया किस रफ्तारे से गति कर रहा है।

उपग्रहों के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं और उसी के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है। उदाहरण केलिए संचार-उपग्रह का उद्देश्य संचार-संबंधी कार्य करना है, वैज्ञानिक उपग्रह का उद्दश्य है वैज्ञानिक जानकरी जुटाना अर्थात पृथ्वी की सही आकृति अंतरिक्ष में उपस्थित विविध विकिरण सौर ऊर्जा, जीवन पर भारहीन अवस्था का प्रभाव इत्यादि की जानकरी प्राप्त करना, फौजी उपग्रह का काम है दुश्मन के सामरिक प्रतिष्ठानों, फ़ौजी जमावों एवं उनकी हलचल आदि, भेदों का पता लगाना और उनकी सूचना देना; और मार्ग-निर्देशक उपग्रह का लक्ष्य है नौचालन में सहायता प्रदान करना।

टाइरस और निम्बस नामक मौसम उपग्रहों वैज्ञानिक अध्ययन में काफी प्रगति हुई है। इनका मुख्य कार्य था मौसम विज्ञान केलिए आवश्यक जानकरी जुटाना-बादलों के चित्र लेना, समुद्री तरंगों का अध्ययन करना, भूमि के तापक्रम इत्यादि

के बारे में आंकड़े इकट्ठे करना ताकि मौसम की सही भविष्यवाणी की जा सके।

मौसम के बारे में जानकारी प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण क्यों है? हर रोज आकाशवाणी पर खबरों के अंत में 'अब मौसम का हाल सुनिए' कहकर 'गरज के साथ छींटें पड़ने' आदि की बातें क्यों बता जाती हैं।

हमारा देश कृषि-प्रधान है। जुताई, बुआई, सिंचाई, कटाई आदि कृषि-कार्यों का मौसम से गहरा संबंध है। अगले चौबीस घंटों के मौसम की जानकारी किसान को पहले से हो तो वह उसके अनुसार अपना कार्यक्रम बना सकता है।

वायुयान-चालकों को भी मौसम का हाल थोड़ी-थोड़ी देर में बताया जाता रहता है, ताकि अचानक आंधी, तूफान, कोहरे आदि में फंसकर भटकने या दुर्घटनाग्रस्त होने से वे वायुयानों को बचा सकें।

मौसम-विज्ञान तेजी से उन्नति कर रहा है। कुछ वर्षों में मनुष्य मौसम के बारे में लगभग सही भविष्यवाणी करने में समर्थ हो जायगा। इसमें उपग्रह बहुत सहायक होंगे। तब मौसम-समाचार आज की तरह कार्टूनों का विषय नहीं रह जाएंगे।

समाचार और सन्देश भेजने के साधन आज बहुत विकसित हो चुके हैं; इसमें उपग्रहों ने भी काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ ही साल पहले टेलिविजन चित्र ५२ मील से ज्यादा दूर नहीं भेजे जा सकते थे; अब टोक्यो से प्रसारित टेलिविजन कार्यक्रम न्यूयार्क में देखा जा सकता है—यह उपग्रह की कृपा से ही हुआ है।

विश्व के अन्य भागों से प्रेषित टेलिविजन-चित्रों को हम क्यों नहीं देख पाते थे ? बात यह है कि टेलिविज़न तरंगें (टी. वी. तरंगें) काफी लंबी होती हैं और सीधी रेखा में चलती हैं। मगर पृथ्वी है गोल, इसलिए ये तरंगें पृथ्वी पर बहुत दूर तक नहीं जा पातीं और इसीलिए टी. वी. चित्र बहुत दूर तक नहीं भेजे जा सकते।

टी. वी. तरंग रेड़ियो की तरंगों से भिन्न होती हैं। दूर देशों में जब रेडियो पर समाचार (रेडियो-संदेश) भेजे जाते हैं, तो वे किस प्रकार पृथ्वी की गोलाई के बावजूद ग्रहण किये जा सकते हैं ? सन १९२० में आलिवर हेविसाइड ने यह पता लगाया कि पृथ्वी से करीब ६० मील ऊपर आकाश में एक आयनित स्तर है, जिसे आयन-मंडल कहते हैं। जब रेडियो-तरंगें वहाँ पहुँचती हैं, तो उससे टकराकर पृथ्वी पर वापस आती हैं।

इसी कारण छोटी तरंगें सुदूर देशों में पहुँच जाती हैं। परंतु तरंगों को लौटाने के मामले में आयन-मंडल पर बहुत भरोसा भी नहीं किया जा सकता। टी. वी. तरंग आदि माको-तरंगें भी सीधी रेखा में चलती हैं; परंतु वे आयन-मंडल से टकराकर वापस नहीं लौटतीं, बल्कि उसके पार चली जाती हैं।

इसलिए क्षितिज के पार टी. वी. तरंगों को भेजने केलिए हमें रिपीटर (दोहरानेवाले) स्टेशनों की आवश्यकता पड़ती है। ये स्टेशन काफी ऊँचे टेलिविजन-स्तंभ से प्रसारित की गयी टी. वी तरंगों को पकड़कर फिर से प्रसारित करते हैं। दो रिपीटरों के बीच की दूरी ५० से ८० किलोमीटर तक होती है।

यह व्यवस्था धरती पर कुछ सौ किलोमीटर तक आसानी से काम कर सकती है। परंतु यदि हम पेरिस से न्यूयार्क को टी. वी तरंगें भेजना चाहें, तो यह व्यवस्था काम नहीं दे सकती। क्योंकि इसके लिए हमें ६५० किलोमीटर ऊँची मीनार बनानी पड़ेगी, जो कि असंभव है। यों भी पेरिस और न्यूयार्क के बीच अटलांटिक महासागर पड़ता है, उसमें सैकड़ों रिपीटर स्टेशन बनाना बहुत कठिन और बेहद खर्चीला काम होगा।

लेकिन उपग्रह ये सब समस्याएँ सुलझा देता है। उपग्रह एक तरह से हवा में लटकती हुई मीनार है। उसकी सहायता से कई स्थानों से एक साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है। एक लाभ उसमें यह भी है कि उसका स्थान भी बदला जा सकता है।

संचार-उपग्रह दो प्रकार के होते हैं— १. दोहराने वाले (रिपीटर) २. लौटानेवाले (परावर्तक)। दोहरानेवाले (रिपीटर) उपग्रहों में रेडियो-रिसीवर (ग्राहक) और ट्रांसमीटर (प्रेषक) दोनों रहते हैं। परंतु लौटानेवाले (परावर्तक) उपग्रहों में कोई विशेष उपकरण नहीं होते। उनका काम तो तरंगों को वापस भेजना मात्र है। उनसे वापस आनेवाली ये तरंगें सब दिशाओं में फैल जाती हैं और टेलिविजन सेट उन्हें ग्रहण करते हैं।

कठिन शब्दार्थ

सवाल उठना - प्रश्न उठना। असल में - वास्तव में।

रफ्तार - चाल, गति। सौर ऊर्जा - सूर्य से प्राप्त शक्ति।

रामलखन—(ज़रा अन्दर आकर) बाबूजी....

मि० सेठ—(क्रोध से) ठहर पाजी, (टेलीफोन में) नहीं नहीं, मैं नौकर से कह रहा था (खिसियाने से होकर हँसते हैं) हाँ, तो आप घोषित कर दें कि मैं असैंबली में हरिजनों के पक्ष की हिमायत करूँगा और वे मेरे हक़ में प्रोपेगेंडा करें।

"है....क्या ? ....अच्छा अच्छा... मैं अवश्य ही जलसे में शामिल होने का प्रयास करूँगा, क्या करूं, अवकाश नहीं मिलता हि हि....हि हि....(हंसते हैं) अच्छा नमस्कार है।"

[टेलीफोन का चोंगा रख देते हैं]

(नौकर से) तुम्हें तो कहा था, इधर मत आना।

रामलखन—आप ई तो कहे कि कोऊ आए तो इत्तला कर देई, मुदा अब ई जमादारिन अपनी मजूरी माँगत....

मि० सेठ—(गुस्से से) कह दो उस से, अगले महीने आये। मेरे पास समय नहीं। चले जाओ। किसी को मत आने दो।

भंगिन—(दरवाजे के बाहर से विनीत स्वर में) महाराज दूधों नहाओ, पूतों फलो। दो महीने हो गये हैं।

मि० सेठ—कह जो दिया। जाओ, अब समय नहीं।

[भगवती प्रवेश करता है]

भगवती—जयराम जी की बाबू जी।

मि० सेठ—तुम इस समय क्यों आये हो भगवती ?

भगवती—बाबूजी, हमारा हिसाब कर दो।

मि० सेठ—(बेपरवाही से) तुम देखते हो, आजकल चुनाव के कारण कुछ नहीं सूझता। कुछ दिन ठहर जाओ।

भगवती—बाबूजी, अब एक घडी भी नहीं ठहर सकते। आप हमारा हिसाब चुका ही दीजिये।

मि० सेठ—(ज़रा ऊँचे स्वर में) कहा जो है, कुछ दिन ठहर जाओ। यहाँ अपना तो होश नहीं और तुम हिसाब-हिसाब चिल्ला रहे हो।

भगवती—जब आप की नौकरी करते हैं तब खाने केलिये और कहाँ माँगने जायें?

मि० सेठ—अभी चार दिन हुए, दो रुपये ले गये थे।

भगवती—वे कहाँ रहे? एक तो मार्ग में बनिये की भेंट हो गयी थी। दूसरे मुश्किल से आज तक काम चला है।

मि० सेठ—(जेब से रुपया निकाल कर फ़र्श पर फेंकते हुए) तो लो। अभी यह एक रुपया ले जाओ।

भगवती—नहीं बाबूजी, एक एक नहीं। आप मेरा सब हिसाब चुका दीजिये। वेतन मिले तीन महीने हो गये हैं। एक-एक दो-दो से कितने दिन काम चलेगा? हमारे भी आखिर बीबी-बच्चे है, उन्हें भी खाने-ओढ़ने को चाहिए। आप एक दिन के चाय-पानी में जितना खर्च कर देते हैं, उतना हमारे एक महीने....

मि० सेठ—(क्रोध से) क्या बक-बक कर रहे हो? कह जो दिया, अभी यही ले जाओ, बाकी फिर ले जाना।

भगवती—हम तो आज ही सब लेकर जायेंगे।

मि० सेठ—(उठ कर, और भी क्रोध से) क्या कहा ? आज ही लोगे। अभी लोगे ! जा। नहीं देते। एक कौड़ी भी नहीं देते। निकल जा यहाँ से, जा, जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर दे। पाजी, हरामखोर, सूअर ! आज तक, सब्जी में, दाल में, सौदा-सुलफ में, यहाँ तक कि बाजार से आनेवाली हर चीज में पैसा खाता रहा, हमने कभी कुछ न कहा और अब यों अकड़ता है। जा निकल जा। जाकर अदालत में मामला चला दे। चोरी के अपराध में छः महीने के लिए जेल न भिजवा दूँ तो नाम नहीं।

भगवती—सच है बाबू जी, गरीब लाख ईमानदार हो तो भी चोर है, डाकू है। और अमीर यदि आँखों में धूल झोंक कर हज़ारों पर हाथ साफ़ कर जाय, चन्दे के नाम पर सहस्रों....

मि० सेठ—(क्रोध से पागल होकर) तू जायगा या नहीं, (नौकर को आवाज देते हैं) रामलखन !

रामलखन—जी बाबू जी, जी बाबूजी !

[भागता हुआ भीतर आता है]

मि० सेठ—इसको बाहर निकाल दो।

रामलखन—(भगवती के बलिष्ठ चौड़े चकले शरीर को नख से शिख तक देख कर) ई को बाहर निकारि सकता, दई ई हमसों कब निकारि सकत, ई तो हमें निकारि दे....

सि० सेठ—(बाजू से रामलखन को परे हटा कर) हट तुम से क्या होगा ?

[भगवती को पकड़ कर पीटते हुए बाहर निकालते हैं] निकलो, निकलो।

भगवती—मार लें और मार लें। हमारे चार पैसे रख कर आप लक्षाधीश न हो जायंगे।

[मि० सेठ उसे बाहर निकाल कर जोर से दरवाजा बन्द कर देते हैं]

मि सेठ....(रामलखन से) तुम यहाँ खड़े क्या देख रहे हो? निकलो।

[रामलखन डर कर निकल जाता है।]

(तख्त-पोश पर लेटते हुए)—मूर्ख, नामाकूल!

[फिर उठ कर कमरे में इधर-उधर घूमते हैं, फिर सीटी बजाते हैं और घूमते हैं, फिर नौकर को आवाज देते हैं—]

रामलखन, रामलखन!

रामलखन—(बाहर से) आए रहे बाबूजी!

[प्रवेश करता है]

मि० सेठ—अखबार अभी आया है कि नहीं?

रामलखन—आ गया बाबू जी, बड़े काका पढ़ि रहन, अभी लाए देत।

मि० सेठ—पहले इधर क्यों नहीं लाया? कितनी बार तुझे कहा अखबार पहले इधर लाया कर! ला भाग कर।

[रामलखन भागता हुआ जाता है]

मि० सेठ—(घूमते हुए अपने आप) मेरा वक्तव्य कितना जोरदार था, छात्रों में हलचल मच गई होगी, सबकी सहानु-भूति मेरे साथ हो जायगी।

[टेलीफोन की घण्टी बजती है।

[मि० सेठ जल्दी से चोंगा उठाते हैं।]

मि० सेठ—(टेलीफोन पर, धीरे से) "हेलो!" (ज़रा ऊंचे) "हेलो!....कौन साहब?....मन्त्री होजरी-यूनियन! अच्छा अच्छा, नमस्कार नमस्कार। सुनाइये, आपके चुनाव-क्षेत्र का क्या हाल है?"

"क्या?........सब मेरे हक में वोट देने को तैयार हैं। मैं कृतज्ञ हूँ। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ।"

"इस ओर से आप बिलकुल निश्चित रहें। मैं उन आदमियों में से नहीं जो कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। मैं जो कहता हुँ वही करता हूँ और जो करता हूँ वही कहता हूँ। आपने मेरा इलेक्शन मैनीफेस्टो (चुनाव सम्बन्धी घोषणा) नहीं पढ़ा। मैं असैंबली में जाते ही मजदूरों की अवस्था सुधारने का प्रयास करूंगा। उनकी स्वास्थ्य-रक्षा, सुख-आराम, पठन-पाठन और दूसरी माँगों के सम्बन्ध में विशेष बिल धारासभा में पेश करूंगा।"

'क्या? हाँ....हाँ इस ओर से भी मैं बेपरवाह नहीं। मैं जानता हूं इस सिलसिले से श्रमजीवियों को किस किस मुसीबत का सामना करना पड़ता है। ये पूंजी-पति गरीब मजदूरों के कई कई महीनों के वेतन रोक कर उन्हें भूखों

मरने पर विवश कर देते हैं। स्वयं मोटरों में सैर करते हैं, शानदार होटलों में खाना खाते हैं और जब ये गरीब रात-दिन परिश्रम करने के बाद—लोहू पानी एक कर देने के बाद अपनी मजदूरी माँगते हैं तब उन्हें हाथ तङ्ग होने का, कारोबार में हानि होने अथवा कोई ऐसा ही दूसरा बहाना बना टाल देते हैं। मैं असैंबली में जाते ही एक ऐसा बिल पेश करूँगा जिससे वेतन के बारे में मजदूरों की सब शिकायतें सरकारी तौर पर सुनी जायँ और जिन लोगों ने गरीब श्रमिकों के वेतन तीन महीने से अधिक दबा रक्खे हों उनके विरुद्ध मामला चला कर उन्हें दण्ड दिया जाय।''

"हाँ, आपकी यह माँग भी सोलहों आने ठीक है। मैं असैंबली में इस माँग का समर्थन करूँगा। सप्ताह में ४२ घण्टे काम की माँग कोई अनुचित नहीं। आखिर मनुष्य और पशु में कुछ तो अंतर होना ही चाहिए। तेरह-तेरह घण्टे की ड्यूटी! भला काम की कुछ हद भी है!''

[धीरे-धीरे दरवाजा खुलता है। और सम्पादक भीतर आते हैं]

[पतले-दुबले से—आँखों पर मोटे शीशे की ऐनक चढ़ी है। गाल पिचक गये हैं। और ऐसा प्रतीत होता है जैसा आपको देर से प्रवाहिका का कष्ट है।]

[धीरे से दरवाजा बन्द करके खड़े रहते हैं]

सि० सेठ—(सम्पादक से) आप बैठिए (टेलीफोन पर) "ये हमारे सम्पादक महोदय आये हैं। अच्छा तो सन्ध्या को

आपकी सभा हो रही है। मै आने की कोशिश करूँगा। और कोई बात हो तो कहिये। नमस्कार!"

[चोंगा रख देते हैं।]

(सम्पादक) बैठ जाइए। आप खड़े क्यों हैं?

सम्पादक....नहीं, कोई बात नहीं।

[तकल्लुफ के साथ कौच पर बैठते हैं।

रामलखन अखबार लिये आता है।]

रामलखन—बड़े काका तो देत नहीं रहन, मुदा जबरदस्ती लेई आये।

सि० सेठ—(समाचार पत्र लेकर) जा, जा बाहर बैठ!

[कुर्सी को तख्त-पोश के पास सरका कर उस पर बैठते हैं पाँव तख्त-पोश पर टिका लेते हैं और समाचार-पत्र देखने लगते हैं।]

सम्पादक—मैं....मैं....

सि० सेठ—(अखबार बन्द करके) हाँ, हाँ, पहले आप ही फर्माइए।

सम्पादक—(ओठों पर जबान फेरते हुए) बात यह है कि मेरी....मेरा....मतलब है....कि मेरी आँखें बहुत खराब हो रही हैं।

सि० सेठ—आपको डाक्टर से परामर्श करना चाहिए था! कहिए डाक्टर खन्ना के नाम रुक्का लिख दूँ।

सम्पादक—नहीं, यह बात नहीं, (थूक निगल कर) बात यह है कि मेरी आँखें इतना बोझ नहीं सहन कर सकतीं। आप

जानते हैं, मुझे दिन के बारह बजे आना पड़ता है। बल्कि आजकल तो साढ़े ग्यारह ही बजे आता हूँ। शाम को छः सात बजे जाता हूँ, फिर रात को नौ बजे आता हूँ और फिर एक भी बज जाता है, दो भी बज जाते हैं तीन भी बज जाते हैं।

मि० सेठ—तो आप इतना न बैठा करें बस जल्दी काम निबटा लिया....।

सम्पादक—मैं तो लाख चाहता हूं, पर जल्दी कैसे निबट सकता है? एक मैं हूँ और दो दूसरे आदमी हैं, जो न ठीक अनुवाद कर सकते हैं न ठीक लेख लिख सकते हैं। और पत्र बड़े-बड़े आठ पृष्ठों का निकालना होता है। फिर भी शायद काम जल्द खतम हो जाय, पर कोई समाचार रह गया तो आप नाराज़....।

मि० सेठ—हाँ-हाँ, समाचार तो न रहना चाहिये।

सम्पादक—और फिर यही नहीं, आपके भाषणों की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करनी होती है। उन्हें ठीक करते डेढ बज जाता है। अब आप ही बताइए पहले कैसे जा सकते है।

मि० सेठ—मैंने पहले भी निवेदन किया था कि यदि एक और आदमी का प्रबंध कर दें तो अच्छा हो। दिन को वह आ जाया करे, रात को मैं, और फिर प्रति सप्ताह बदली भी हो सकती है। जिससे....

मि० सेठ—मैं आप से पहले भी कह चुका हूँ, यह असंभव है, बिलकुल असंभव है। अखबार कोई बहुत लाभ पर नहीं चल रहा है। इस पर एक और संपादक के वेतन का बोझ कैसे

डाला जा सकता है ? अगले महीने पाँच रुपये में आपको बढ़ा दूंगा।

संपादक—मेरा स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता। आखिर आँखें कब तक बारह-बारह घण्टे काम कर सकती हैं।

मि० सेठ—कैसी मूर्खों की बातें करते हो जी। छः महीने में पाँच रुपया वृद्धि तो सरकार के घर में भी नहीं मिलती। वैसे आप काम छोड़ना चाहें तो शौक से छोड़ दें। एक नहीं दस आदमी मिल जाएँगे, लेकिन....

[रामलखन भीतर आता है]

रामलखन—बाहर दुइ लड़िका आप से मिलता चाहत रहना।

मि० सेठ—कौन हैं ?

रामलखन—कोई मकटड़ी कहे रहेन....

मि० सेठ—जाओ, बुला लाओ। (संपादक से) आज के पत्र में मेरा जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, मालूम होता है, उसका कालेज के लड़कों पर अच्छा प्रभाव पड़ा है।

संपादक—(मुँह फुलाए हुए) अवश्य पड़ा होगा।

मि० सेठ—मैं ने छात्रों के अधिकारों की हिमायत भी तो खूब की है, छात्र-संघ ने जो माँगें विश्वविद्यालय के सामने पेश की हैं, मैं ने उन सबका समर्थन किया है।

[दो लडके प्रवेश करते हैं। दोनों सूट पहने हुए हैं, एक ने टाई लगा रक्खी है, दूसरे के गले कालर की कमीज है।]

दोनों—नमस्ते !

मि० सेठ—नमस्ते !

[दोनों कोच पर बैठते हैं।]

मि० सेठ—कहिए मैं आप की क्या सेवा कर सकता हूं।

खुले कालर वाला—हमने आज आपका वक्तव्य पढ़ा है।

मि० सेठ—आपने उसे कैसा पसन्द किया ?

वही लड़का—छात्रों में सब ओर उसी की चर्चा है बड़ा जोश प्रकट किया जा रहा है।

मि० सेठ—आप के मित्र किधर वोट दे रहे हैं ?

वही लड़का—कल तक तो कुछ न पूछिये, लेकिन मैं आप को निश्चय दिलाता हूं कि इस बयान के बाद ७५ प्रतिशत आप की ओर हो गये हैं। अभी हमारी सभा हुई थी ! छात्रों का बहुमत आप की तरफ था।

मि० सेठ—(प्रसन्नता से) और मैं ने गलत ही क्या लिखा है ! जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है वे नवयुवकों का प्रतिनिधित्व क्या खाक करेंगे ? युवकों को तो उस नेता की आवश्यकता है जो शरीर से चाहे बूढ़ा हो चुका हो, पर जिसके विचार न बूढ़े हों, जो रिफार्म से खौफ न खाये, सुधारों से कन्नी न कतराये।

वही लड़का—हम अपने कालेज के प्रबन्ध में भी कुछ परिवर्तन चाहते थे। परन्तु कालेज के सर्वे-सर्वाओं ने हमारी बात ही नहीं सुनी।

मि० सेठ—आप को प्रोटेस्ट (विरोध) करना चाहिए था।

वही लड़का—हमने हड़ताल कर दी है।

मि० सेठ—आप ने क्या माँगें पेश की हैं ?

वही लड़का—हम वर्तमान प्रिंसिपल को नहीं चाहते। न वह ठीक तरह पढ़ा सकता है, न ठीक प्रबन्ध कर सकता है, कोई छींके तो जुर्माना कर देता है, कोई खाँसे तो बाहर निकाल देता है। छात्रों से उसका व्यवहार सर्वथा अनुचित और उनके नातेदारों से अत्यन्त अपमान--जनक है !

मि० सेठ--(कुछ उत्साहहीन होकर) तो आप क्या चाहते हैं ?

दोनों—हम योग्य प्रिंसिपल चाहते है।

मि० सेठ—(गिरी हुई आवाज़ में) आपकी माँग उचित है, पर अच्छा होता यदि आप हड़ताल करने के बदले कोई वैधानिक रीति प्रयोग में लाते, प्रबंधकों से मिल जुल कर मामला ठीक करा लेते।

वही लड़का—हम सब कुछ करके देख चुके हैं।

मि० सेठ—हूँ !

टाई वाला लडका—बात यह है जनाब, की छात्र कई वर्षो से वर्तमान प्रिंसिपल से असंतोष प्रकट करते आ रहे हैं, पर व्यवस्थापकों ने तनिक भी परवाह न की। कई बार आवेदन—पत्र कालेज की प्रबन्धक कमेटी के पास भेजे गये, पर कमेटी के कानों पर जूँ तक भी नहीं रेंगी। हार कर हमने हड़ताल कर दी है, पर कठिनाई यह है कि कमेटी मजबूत है, प्रेस पर उसका अधिकार है। हमारे विरुद्ध

सच्चे-झूठे वक्तव्य प्रकाशित कराये जा रहे हैं, और हमारी खबर तक नहीं छापी जाती। आपने छात्रों की सहायता का, उनके अधिकारों की रक्षा का बीड़ा उठाया है इसीलिए हम आप की सेवा में उपस्थित हुए हैं।

मि० सेठ—(अन्यमनस्कता से) मैं आपका सेवक हूँ। ये हमारे संपादक हैं। आप कल दफ्तर में जाकर इनको अपना बयान दे दें। ये जितना उचित समझेंगे छाप देंगे।

दोनों—(उठते हुए) बहुत बेहतर, कल हम संपादक जी की सेवा में उपस्थित होंगे। नमस्कार।

मि० सेठ और सम्पादक—नमस्कार।

[दोनों का प्रस्थान]

मि० सेठ—(सम्पादक से) यदि कल ये आयें तो इनका बयान हरगिज़ न छापना। प्रिंसिपल हमारे कृपालु हैं और कमेटी के सदस्य हमारे मित्र।

सम्पादक—(मुँह फुलाए हुए) बहुत अच्छा।

मि० सेठ—आप घबराएं नहीं, यदि आपको कुछ दिन ज्यादा काम ही करना पड़ गया तो क्या आफ़त आ गई। जब मैं ने अखबार शुरू किया था तब चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घण्टे काम किया करता था, यह महीना आप किसी न किसी तरह निकालिए, चुनाव हो ले, फिर कोई प्रबन्ध कर दूँगा।

सम्पादक—(दीर्घ निःश्वास छोड़कर) बहुत अच्छा।....नमस्कार।
[सेठजी केवल सिर हिलाते हैं। सम्पादक महोदय चले जाते हैं।]

[मि० सेठ समाचार-पत्र पढ़ना शुरू कर देते हैं। दरवाज़ा ज़ोर से खुलता है और बलराम का बाज़ू थामे श्रीमती सेठ बगुले की भाँति प्रवेश करती है]

श्रीमती सेठ—मैं कहती हूँ, आप बच्चों से कभी प्यार करना भी सीखेंगे। जब देखो, घूरते, झिड़कते, डाँटते, नज़र आते हैं, जैसे बच्चे अपने न हों, पराये हों। भला आज इस बेचारे से क्या अपराध हो गया जो पीटने लगे? देखो तो सही अभी तक कान कितना लाल है।

मि० सेठ—(पूर्ववत् समाचार-पत्र पर दृष्टि जमाये हुए) तुम्हें कभी बात करने का सलीक़ा भी आएगा! जाओ इस समय मेरे पास समय नहीं।

श्रीमती सेठ—आपके पास हमारी बात सुनने के लिए कभी वक्त होता भी है? मारने और पीटने केलिये जाने कहाँ से समय निकल आता है! इतनी देर से ढुंढ रही थी इसे। नाश्ता कब से तैयार था, बीसों आवाज़ें दीं, घर का कोना कोना छान मारा आखिर देखा कि भूसे की कोठरी में बैठ सिसक रहा है। आखिर क्या बात हो गई थी?

मि० सेठ—(क्रोध से अखबार को तख्त-पोश पर पटक कर) क्या बके जा रही हो? बीस बार कहा है कि इन सब को सँभाल कर रक्खा करो। आ जाते हैं सुबह सुबह दिमाग चाटने के लिये।

[श्रीमती सेठ बच्चे के दो थप्पड़ लगाती हैं, बच्चा रोता है।]

श्रीमती सेठ—तुझे कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया कर। ये बाप नहीं दुश्मन हैं। लोगों के बच्चों से प्रेम करेंगे, उनके सिर पर प्यार का हाथ फेरेंगे, उनके स्वास्थ्य केलिये बिल पास करायेंगे, उनकी उन्नति के भाषण झाड़ते फिरेंगे और अपने बच्चों केलिए भूल कर भी प्यार का एक शब्द जबान पर न लायेंगे।

[बच्चे के और चपत लगाती हैं]

—तुझे कितनी बार कहा है, न आया कर इस कमरे में। मैं तुझे नौकर के साथ मेला देखने भेज देती। (आवाज ऊँची होते होते रोने की हद को पहुंच जाती है।) स्वयं जाकर दिखा लाती। तू क्यों आया यहाँ—मार खाने, कान तुड़वाने ?

मि॰ सेठ—(क्रोध से पागल हो कर, पत्नी को ढकेलते हुए)—मैं कहता हूँ इसे पीटना है तो उधर जा कर पीटो। यहाँ इस कमरे में आकर क्यों शोर मचा दिया। अभी कोई आ जाय तो क्या हो ? कितनी बार कहा है, इस कमरे में न आया करो। घर के अंदर जा कर बैठा करो।

[श्रीमती सेठ तुनक कर खड़ी हो जाती है]

श्रीमती सेठ—आप कभी घर के अंदर आयें भी। आपके लिये तो जैसे घर के अंदर आना गुनाह करने के बराबर है। खाना इस कमरे में खाओ, टेलीफोन सिरहाने रख कर इसी कमरे में सोओ, सारा दिन मिलनेवालों का ताँता लगा रहे। न हो तो कुछ लिखते रहो, लिखो न तो पढ़ते रहो, पढ़ो न तो बैठे सोचते रहो। आखिर हमें कुछ कहना हो तो किस समय कहें ?

मि० सेठ—कौन-सा मैं ने उसका सिर फोड़ दिया है, जो कुछ कहने की नौबत आ गई ? जरा-सा उसका कान पकड़ा था कि बस आकाश सिर पर उठा लिया।

श्रीमती सेठ—सिर फोड़ने का अरमान रह गया हो तो वह भी निकाल डालियें। कहें तो मैं ही उसका सिर फोड़ दूं।

[उन्मादिनी की भाँति बच्चे का सिर पकड़ कर तख्तपोश पर मारती हैं। मि० सेठ तड़ातड़ पीटते हैं।]

मि० सेठ—मैं कहता हुँ तुम पागल हो गई हो। निकल जाओ यहाँ से। इसे मारना है तो उधर जा कर मारो, पीटना है तो उधर जा कर पीटो, सिर फोड़ना है तो उधर जा कर फोड़ो। तुम्हारी नित्य की बकबक से तङ्ग आ कर मैं इधर एकांत में आ गया हूँ। अब यहाँ आ कर भी तुमने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया है! क्या चाहती हो? यहाँ से भी चला जाऊँ?

श्रीमती सेठ—(रोते हुए) आप क्यों चले आयें? हम ही चले जायेंगे।

[भर्राई हुई आवाज़ में नौकर को आवाज देती है]
रामलखन, रामलखन !

रामलखन—जी बीबी जी।

[प्रवेश करता है]

श्रीमती सेठ—जाओ। जाकर ताँगा ले आओ। मैं मायके जाऊँगी। (तेजी से बच्चे को लेकर चली जाती है। दरवाजा ज़ोर से बन्द होता है।)

मि० सेठ—बेवक़ूफ़ !

[आरामकुर्सी पर बैठ कर टाँगें तख्तपोश पर रख देते हैं और पीछे को लेट कर अखबार पढ़ने लगते हैं। टेलीफोन की घण्टी बजती है।]

मि० सेठ—(वहीं से चोंगा उठा कर कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो ! ....नहीं, यह ३८१२ है, गलत नम्बर है।"

(बेचारी से चोंगा रख देते हैं)

ईडियट्स*।

(टेलीफोन की घण्टी फिर बजती है)

(और भी कर्कश स्वर में) "हेलो ! हेलो !"

"कौन ? श्रीमती सरला देवी ! (उठ कर बैठता है। चेहरे पर मृदुलता और आवाज़ में माधुर्य आ जाता है) माफ़ कीजियेगा, मैं ज़रा परेशान हूँ। सुनाइए तबीयत तो ठीक है ?"

(दीर्घ निःश्वास छोड़ कर) "मैं भी आपकी कृपा से अच्छा हूं। सुनाइए आपके महिला-समाज ने क्या पास किया है ? मैं भी कुछ आशा रखूँ या नहीं।"

"मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ, अत्यन्त आभारी हूं। आप निश्चय रक्खें। मैं जी-जान से स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा करूँगा। महिलाओं के अधिकारों का मुझ से बेहतर रक्षक आपको वर्तमान उम्मीदवारों में कहीं नज़र न आयेगा।...."

(पर्दा गिरता है)

---

*मूर्ख

कठिन शब्दार्थ

ऊलजलूल - असबद्ध। दकियानूसी — अत्यंत प्राचीन।
अहमक — मूर्ख। हिमायत - मदद। कन्नी कतराना —
किसी बात से विचलित होना। गुनाह — पाप।

व्याख्या करें:—

१. सच है बाबूजी, गरीब लाख ईमानदार .... चन्दे के नाम पर सहस्रों।
२. मैं उन आदमियों से नहीं जो कहते हैं .... वही कहता हूँ।
३. जिन लोगों का मन बूढ़ा हो चुका है .... कन्नी न कतराये।

उत्तर लिखें

१. इस एकांकी मे सेठजी के किन किन आचरणों पर व्यंग्य किया गया है?
२. इस मे सेठजी किन किन वर्गों के लोगों के अधिकारों की रक्षा करते दिखाए गये हैं?
३. कथनी और करनी का मेल बिठाने में सेठजी कहां तक सफल हुए हैं?
४. इस एकांकी का सब से अधिक मार्मिक प्रसंग कौन सा है?

प्रशंसा के चक्कर में फँसकर

गोपाल प्रसाद व्यास

[गोपाल प्रसादव्यास उच्चकोटि के कवि लेखक और पत्रकार हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य से सबद्ध कई संस्थाओं से इनका निकट का संबध रहा है। व्यंग्य–विनोद के प्रति उन में विशेष आस्था है जो उनकी प्राय:सभी रचनाओं में दृष्टिगत होती है। "अजी सुनो". "चले आ रहे हैं," "कुछ सच, कुछ झूठ" आदि में संग्रहीत उनकी रचनाओं मे शिष्ट हास्य के सुन्दर प्रसंग वर्तमान है।

प्रस्तुत निबंध मे लेखक ने प्रशंसा के प्रति अत्यधिक मोह रखनेवालों की हंसी उडाई है। प्रशंसा किस को अच्छी नहीं लगती। परन्तु अति से हानि की ही संभावना है। इसी को एक मार्मिक घटना द्वारा लेखक ने इस मे प्रस्तुत किया है।]

मुझे बहुत–सी चीजें प्रिय हैं। कहें तो कुछ के नाम बताऊँ? गुलाब का इत्र, जुही की माला, रेशम का कुर्ता, खोये की बर्फी, दही की गुझियाँ, असली घी की जलेबी और मगही पान मिल जाये तो समझ लीजिये–उहाँ छाड़ि इहि बैठे वैकुंठा।

ब्राह्मण हूं. पर निरा पेटू नहीं। मुझे अपनी पुस्तकें भी कम प्रिय नहीं। लेकिन पुस्तकों से प्यार है, इसके यह

अर्थ भी नहीं कि मैं संसारी नहीं। बीबी-बच्चे, घर-बार सभी से तो मुझे प्यार है।

फिर भी एक वस्तु ऐसी बच ही जाती है, जिसकी इन सब चीजों से कोई तुलना नहीं। वह कोई बहुत बडी वस्तु नहीं। एक छोटी-सी बात है। यही अपनी मामूली सी प्रशंसा। बस, यही एक चीज ऐसी है जिसे सुनने केलिए मैं क्या नहीं कर सकता, क्या नहीं सह सकता?

खाना न दीजिये, कपडा न दीजिये, रुपया-रोजगार न दीजिये, लेकिन कृपा करके दिल खोलकर झूठी ही सही, मेरी प्रशंसा किये जाइये, मैं आपकी जूतियों का गुलाम हूँ। उस हालत में मुझ जैसा बेदाम का नौकर, बे-उजर चाकर आप कहीं खोजे भी न पाइयेगा। चालीस के ऊपर आयु होती आई। सैकडों ही दोस्त बनें। लेकिन टिके वही, जो मेरी प्रशंसा करते रहे। जिसने खरी कही, मैंने उससे अपनी राह गही। क्या बताऊँ, जानता सब हूँ, मगर इस मामले में मानता किसी की नहीं। खरी बात कह सबसे सकती हूं। लेकिन खरी सुनकर मुझे प्रसन्नता हर्गिज नहीं होती। असर मुझपर मीठी बात का ही होता है। इसे लाचारी कहिये, कमजोरी कहिये, चाहे तो बुराई भी कह लीजिये। बात यह मुझमें है। मैं इसे इनकार नहीं करता।

हिन्दुस्तान में सोने का बडा मोल है। लडाई समाप्त हुये एक जमाना हो गया, मगर इसके भाव गिरते ही नहीं। कहते हैं 'प्लाटिनम' का मूल्य सोने से भी बड़ा है। रत्न-जवाहरातों के क्या कहने। लेकिन मेरी दृष्टि में इन सबका

मूल्य प्रशंसा के दो मीठे शब्दों के मुकाबले तीन कौड़ी का भी नहीं।

इसीलिए मैं प्रशंसक के मूल्य को अच्छी तरह जानता हूँ। क्यों न जानूं? सरकारें भी तो प्रशंसकों के बल पर चलती हैं। सरकार क्या, भगवान को भी अगर प्रशंसकों को टोटा पड़ जाये तो उसकी भी बधिया बैठ जाय। तरह-तरह के लालच देकर, वह अपने गीत उनसे गवाया करता है। कवियों के साथ भी यही बात है। कवि लोग अन्न-जल पर थोड़े ही जीते हैं? ये तो प्रशंसा के पादप हैं। मिलती रहेगी तो खिलते रहेंगे नहीं, तो कुम्हलाते क्या देर लगती है। इसीलिए उस दिन रेल में जब मुझे मेरी रचनाओं के एक प्रशंसक अनायास ही मिल गये तो खुशी का ठिकाना न रहा।

हम लोग उस दिन गाजियाबाद से दिल्ली लौट रहे थे। गाड़ी में जो साहित्यचर्चा चली तो बात-बात में एक महोदय मेरा नाम जान गए। वह स्वयं मेरे पास खिसक आए। कहने लगे: 'धन्य भाग! वर्षों से आपका नाम पढ़ते-सुनते थे। बड़ी तमन्ना थी आपके दर्शनों की। क्या कमाल का लिखते हैं आप? आपकी रचनाओं को तो हमने अखबारों से काट-काट कर एक रजिस्टर में चिपका रखा है। आपकी पुस्तकों के सभी संस्करण हमारे पास हैं। मेरी पत्नी तो आपकी रचनाओं के पीछे समझिए, जैसे पागल है। और-तो और, मेरी छोटी मुन्नी भी आपकी कई कविताएँ कंठस्थ है।"

शब्द क्या थे मानो बूंद-बूंद से अमृत झर रहा था। यात्रा की सारी थकान, डिब्बे की ठेल-पेल और साहित्य-चर्चा से उत्पन्न उमस जैसे सब कुछ शीतल, तरल और क्या कहूं रसमय हो चला। मेरे मन की बन्द कली जैसे खट करके खिल उठी।

बगल में बैठे अपने मित्रों की ओर मैंने जरा तनकर देखा और महसूस किया कि उनपर ही नहीं, इन अनजान मित्र की बातों का असर सारे डिब्बे पर बड़ा अनुकूल पड़ा है। कुछ ही सैकिंड में मैं उस डिब्बे का एक महत्व-पूर्ण व्यक्ति बन गया।

अपनी प्रशंसा सुनकर क्योंकि सज्जन पुरुष संकोच करने लगते हैं, मैंने भी वही किया। मैं विनयी हो आया, कहने लगा: "जो, मैं क्या हूँ। आप जैसे गुणीजनों को कुछ पसन्द आ जाय, मेरे लिए यही बहुत बड़ी बात है।"

"विनय बहुत बडी बात है। विनय बडों को ही शोभा देती है।" अनजान मित्र कहने लगे—"ज्ञानी ही सहनशील होते है। शिष्टता ओछों के बाँटे नहीं आती–ओछे बर्तन में तो पानी छलकता है। मैं हिन्दुस्तान के अनेक साहित्यकारों और कलाविदों से मिला हूँ। मुंह देखी नहीं कहता, राम-राम उनमें यह बात कहाँ? आपको तो देखकर ही ऐसा लगता है जैसे अपने परिवार के ही आदमी हैं।" कहते-कहते उन्होंने सिगरेट का पैकिट मेरी ओर बढ़ाया।

मैंने और भी विनम्र होकर हाथ जोड लिए। तो वह कहने लगे "और आप सिगरेट भी नहीं पीते? तब और

क्या पीते होंगे? लेकिन इतना मादक, इतना सरस चीजें आप लिखते कैसे हैं? सच कहता हूँ कि मैं तो जब आपकी रचनाएँ पढ़ने लगता हूँ तो सुधबुध खो बैठता हूँ। अहा! अभी परसों के सप्ताहिक में आपकी वह भ्रमर और कली वाली रचना पढ़ी थी! क्या कहने है? दिल बाग-बाग हो गया।

बातों का यह सिलसिला अभी और लम्बा चलता, मगर गाडी शाहदरा स्टेशन पार कर यमुना के पुल पर आ गई थी। दिल्ली जंक्शन आने ही वाला था।

बातों-बातों में ज्ञात हुआ कि मेरे मेहरबान दोस्त कलकत्ते में अपना कोई बड़ा व्यापार चलाते हैं। दो दिन के लिए किसी काम से राजधानी आए हैं। वह जिस होटल में ठहरने वाले थे उन्होंने उसका पता भी बताया और आग्रह किया कि मैं उनके यहाँ कम से कम एक बार चाय पीकर तो उन्हें अवश्य ही कृतार्थ करूँ।

दिल्ली में बसे 92 वर्ष से ऊपर हो गए। लेकिन अभी भी दिल्ली मुझसे कुछ दूर ही बनी हुई है। पुरखे कह गए हैं कि दिल्ली में आदमी को जरा सोच-समझकर चलना चाहिए। यहाँ लोगों से व्यवहार करते समय उन्हें बीस बार परखना चाहिए। इसीलिए कोई लाख कहे, मैं किसी को अपना घर नहीं दिखाता। मित्रलोग मेरी इस आदत से भली भाँति परिचित हैं। लेकिन कुछ अपनी आदत, कुछ पत्नी के अद्वैत स्वभाव और कुछ अल्प बचत योजना का असर कि मित्रों के उलाहने और अमित्रों के उलाहने और अमित्रों के ताने कभी मुझपर असर नहीं करते।

लेकिन इस बार की बात दूसरी थी, क्योंकि श्रीमतीजी मैके पधारी हुई थीं और अभी महीने की सिर्फ तीसरी ही तारीख थी। आपसे क्या छिपाऊँ, सबसे बड़ी बात यह कि उन गुणग्राहक मित्र की बातों से अभी मेरी पूरी तसल्ली भी नहीं हुई थी। परिणाम यह कि एक कदम गलत उठ गया। वैसे ऐसे मामलों में मैं उचित-अनुचित का जरा कम ही ख्याल रखता हूँ। लेकिन उस बार न जाने क्या हुआ कि उनके मुख से अपनी शराफत का गुणगान सुनकर मुझे यह उचित नहीं लगा कि अपने शहर में आए हुए एक दुर्लभ पारखी को अपने घर न बुलाकर खुद उनके किराए के होटल में चलकर चाय पीने की धृष्टता की जाय।

अगर मैं जल्दी न होता, या मुझे एक बार भी अपनी बात फिर से विचार करने का अवसर मिल जाता तो मैं कदापि वैसा नहीं करता। लेकिन गाडी स्टेशन पर ठहर गई थी और लोगों के चढ़ने-उतरने की रेल-पेल फिर से शुरू हो गई थी। इस गड़बड़ी में मैं फंस गया। और क्या बताऊँ, जो अब तक कभी न किया था, वह कर ही डाला। यानी मैंने उन महाशय को अपने घर का पता बता दिया। बडे तपाक से मैं ने कहा: "भला, यह भी कोई बात हुई? आप हमारे शहर में आएँ, और उलटे हम आपके मेहमान बनें। लाख दिल्ली अब पुरानी नहीं रही, लेकिन ऐसा भी क्या हुआ? आपको मेरा घर पवित्र करना ही पडेगा।"

थोडे शिष्टाचार के बाद उन्होंने मेरा निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। दूसरे दिन मैं ने उनके स्वागत की तैयारी की।

पत्नी थी नहीं। नौकर घर में हम लोग खुद ही होते हैं। इसलिए, उस दिन मैं सुबह तड़के ही उठ बैठा। सारा घर साफ करके आइने माफिक चमका दिया। चीजों को करीनों में जमाया। बाजार से कुछ नमकीन, कुछ मीठा कुछ फल लाकर रख छोडे। कुछ पुड़िया पानों की भी पहले से ही ले छोड़ी। पास के होटल वाले से कह आया कि ठीक ८ बजे किसी को भेजकर चाय के लिए पुछवा ले।

मित्र घड़ी के टाइम पर टेक्सी से उतरे। टेक्सी का बिल चुकाने लगा तो उन्होंने हाथ पकड़ लिया। घर में घुसते ही उन्होंने बच्चों के बारे में पूछा। यह बताने पर कि वे सब तो अपने ननिहाल गए हैं, एक सद्गृहस्थ की भांति उन्हें बडी निराशा हुई।

सूने घर में हम लोग मेजों पर पेर फेला कर जम गए। हमें डर भी किसका था? न घर में पत्नी का, न बाहर सरकार का। हमने दाल-मोंठ से लेकर अणुबम तक पर विशेषज्ञों की भांति चर्चा की। छत्रों की अनुशासनहीनता से लेकर स्वेज-समस्या तक हमारी तीखी नजर दौड गई। हमने दुनिया के सभी बुद्धिमानों को उस समय लगभग बुद्धू ही सिद्ध कर दिया।

हमारी बातचीत प्राय: साहित्य के आस-पास घूमती रही। शायद ही संसार का कोई कवि, लेखक या उपन्यासकार ऐसा बचा हो, जिसके गुण-दोषों का हमने उस दिन पर्दाफास न कर डाला हो।

मेरे मित्र की जानकारी अद्भुत थी। वह हर साहित्यिक की पुस्तकों के बारे में ही नहीं, उनकी आदतों, पसंदों और कपडों के बारे में भी पक्का पता रखते थे। किसकी किससे बनती है, किसकी किससे चलती है, किसने किसका कहाँ क्या चराया है, कौन कहाँ क्या तिकड़म कर रहा है, इस सबका उन्हें सही-सही पता था। बीच-बीच में रामायण के सम्पुट-पाठ की तरह वह प्रसंग और अवसर निकालकर मेरी रचनाओं की, मेरे स्वभाव और मीठे व्यवहार की भी लगे-हाथों तारीफ़ करते चलते थे।

मिठाई की मिठास उस दिन कैसी थी क्या बताऊँ? जब-जब वह महाशय मेरा गुणगान करते तब-तब मेरा नमकीन चीजों की सार्थकता पर बिश्वास जमता जाता। फल सफल हो रहे थे। चाय आ रही थी और न जाने कहाँ समाई जा रही थी? मुझे लगा कि ये ७ घटे जैसे ७ मिनटों में ही समाप्त हो गए। समझ की क्रूरता का मैंने उस दिन सही-सही अनुमान किया। उस दिन मैं ने जाना कि प्रियकथन श्रवण केलिए किस प्रकार दो कान ही काफी नहीं हैं।

काफी दूर तक मैं उन्हें छोड़ने गया। लौटा तो लगा कि मेरा मन भी कहीं बाहर ही छूट गया है। रात को बडी देर तक नींद नहीं आई। तुलसीदास की यह चौपाई उस दिन मुझे कई बार याद आई:

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहीं संता॥

पड़ा-पड़ा मैं यही सोचता रहा कि इसी प्रकार कोई सहृदय समालोचक मिल जाय तो मुझे व्यास, कालिदास, मिल्टन, शेक्सपीयर बनते अब देर नहीं लगती। सोते-सोते मुझे यह विश्वास भी हो गया कि लोग लाख ईर्ष्या करें मेरी कला को, साधना को, समझने वाले अब पैदा होने लगे हैं। मेरे महान् बनने में अब देर नहीं।

दूसरे दिन काफी देर गये मेरी आँख खुली। रात की प्रशंसा का खुमार अभी पूरा-पूरा नहीं उतरा था। मैं ने आइने में गौर से झाँककर बाल जरा सीधे किये। कमीज डालकर बाहर चाय पीने निकला तो याद आया, जेब खाली है। सोचा कुछ पैसे लेता चलूँ। कल की चाय का बिल भी चुकाना है।

लेकिन मेज की दराज खोली, तो सन्न रहा गया। वह अस्त-व्यस्त पडी थी। मनीबैग गायब था। दौड़कर दरवाजे पर गया तो देखा ताला-कुंजी सब अन्दर से ठीक तरह बन्द थे। जीना-खिड़की सब सही-सलामत थे। रात को तो सोने के बाद कोई आया नहीं। तब बटुआ क्या हुआ?

मेरी आँखों के सामने से प्रशंसा का परदा खर्र से खिसक गया। एक-एक करके मुझे कल शाम की सारी घटनायें याद आने लगीं। प्रशंसा मुझे काफी महँगी पड़ी थी। मेरे मेहरबान मित्र महीने भर का पूरा वेतन अपनी प्रशंसाओं के पारिश्रमिक वसूल कर ले गये थे।

भला ऐसे चतुर कहीं होटलों का पक्का पता बता देते हैं। चाय के जूठे बर्तन, चारों तरफ फैले सिगरेटों के

टुकड़े, फलों के छिलके, जूठी तश्तरियां मानो सब विद्रूप से मुह बिचकाकर मुझसे पूछ रहे थे— 'कहिए महाशय, महाकवि बनने में अब कितनी देर है ?"

कठिन शब्दार्थ

रोजगार – नौकरी, पेशा। तमन्ना - कामना। ठेलपेल – धक्कम धक्का। दिल बाग बाग हो जाना। धृष्टता - अनुचित साहस, गुस्ताखी। अनुशासन - आदेश, हुक्म। खुमार – नशा। सही सलामत - भला-चंगा।

व्याख्या करें

१. ज्ञानी ही सहनशील ... पानी छलकता है।
२. भला, यह भी कोई बात .... पवित्र करना पड़ेगा।
३. चाय के जूठे ... महा कवि बनने मे कितनी देर है।

उत्तर लिखें

१. प्रशंसा के चक्कर में फंसने पर लेखक को जो अनुभव प्राप्त हुए उनका वर्णन करें।
२. इस निबंध में लेखक मुख्य रूप से क्या समझाना चाहते हैं ? संक्षेप में लिखें।
३. प्रशंसा क्या होती है ? क्या उसका फल बुरा ही होता है ? लेखक ने उसे जिस रूप में प्रस्तुत किया है. उसके संबंध में आप के क्या विचार है।

उपग्रहों के उपयोग

डा. जगदीश लूथरा

[डा. जगदीश लूथरा, ट्राम्बे के भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र के रसायन प्रभाग के वैज्ञानिक अधिकारी हैं। उनका जन्म ३० नवंबर १९३५ को पाकिस्थान स्थित साहीवाल में हुआ था। कुछ समय तक जोधपुर विश्वविद्यालय के जसवंत कालिज में व्याख्याता रहे। अमेरिका में भी कुछ समय तक वैज्ञानिक शोध मे संलग्न थे। हिन्दी मे वैज्ञानिक साहित्य के सृजन में वे व्यस्त हैं। भारत की कई प्रमुख पत्रिकाओं में उनके अनेक वैज्ञानिक लेख प्रकाशित हुए हैं। परमाणु ऊर्जा विभाग की त्रैमासिक पत्रिका "परमाणु" के संपादन मंडल में वे सदस्य है। उनका प्रस्तुत लेख वैज्ञानिक साहित्य की रचना में उनकी अभिरुचि प्रकट करता है।]

हजार से ज्यादा उपग्रह अभी तक छोड़े जा चुके हैं। इसमें से कई खतम हो चुके हैं, कई अभी कार्यरत हैं, और कई तो अंतरिक्ष की गहराइयों में भटक गये हैं। उपग्रह भेजने का सिलसिला अभी जारी है और आगे भी जारी रहेगा। सवाल उठता है कि यह सारा प्रयास किसलिए ?

अंतरिक्ष में घूमता हुआ उपग्रह एक प्रकार से मंच का कार्य करता है। उस ऊँचाई से वह पृथ्वी का अवलोकन ऊपर से करता है और जानकारी इकट्ठी करके उसे पृथ्वी पर भेजता

है। ज्यादातर उपग्रह मानव-रहित होते हैं, परंतु उनके पास मशीनी आँखें होती हैं। ये मशीनी आँखें असल में विशेष उपकरण हैं, जो पृथ्वी के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं और उसे टेलिमीटरी विधि (दूरमापी) से पृथ्वी पर भेजते हैं। इन सूचनाओं को इकठ्ठा करने केलिए पृथ्वी पर भू-स्टेशन होते हैं। टेलिमीटरी का सबसे सरल उदाहरण है मोटर-कार में लगा हुआ रफ्तार बतानेवाल मीटर। उसकी मदद से ड्राइवर कार में बैठे-बैठे ही पता लगा सकता है कि कार का पहिया किस रफ्तारे से गति कर रहा है।

उपग्रहों के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं और उसी के अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है। उदाहरण केलिए संचार-उपग्रह का उदेश्य संचार-संबंधी कार्य करना है, वैज्ञानिक उपग्रह का उद्देश्य है वैज्ञानिक जानकरी जुटाना अर्थात पृथ्वी की सही आकृति अंतरिक्ष में उपस्थित विविध विकिरण सौर ऊर्जा, जीवन पर भारहीन अवस्था का प्रभाव इत्यादि की जानकरी प्राप्त करना, फौजी उपग्रह का काम है दुश्मन के सामरिक प्रतिष्ठानों, फ़ौजी जमावों एवं उनकी हलचल आदि, भेदों का पता लगाना और उनकी सूचना देना; और मार्ग-निर्देशक उपग्रह का लक्ष्य है नौचालन में सहायता प्रदान करना।

टाइरस और निम्बस नामक मौसम उपग्रहों वैज्ञानिक अध्ययन में काफी प्रगति हुई है। इनका मुख्य कार्य था मौसम विज्ञान केलिए आवश्यक जानकरी जुटाना-बादलों के चित्र लेना, समुद्री तरंगों का अध्ययन करना, भूमि के तापक्रम इत्यादि

के बारे में आंकड़े इकट्ठे करना ताकि मौसम की सही भविष्यवाणी की जा सके।

मौसम के बारे में जानकारी प्राप्त करना इतना महत्वपूर्ण क्यों है? हर रोज आकाशवाणी पर खबरों के अंत में 'अब मौसम का हाल सुनिए' कहकर 'गरज के साथ छींटें पड़ने' आदि की बातें क्यों बता जाती हैं।

हमारा देश कृषि-प्रधान है। जुताई, बुआई, सिंचाई, कटाई आदि कृषि-कार्यों का मौसम से गहरा संबंध है। अगले चौबीस घंटों के मौसम की जानकारी किसान को पहले से हो तो वह उसके अनुसार अपना कार्यक्रम बना सकता है।

वायुयान-चालकों को भी मौसम का हाल थोड़ी-थोड़ी देर में बताया जाता रहता है, ताकि अचानक आँधी, तूफान, कोहरे आदि में फंसकर भटकने या दुर्घटनाग्रस्त होने से वे वायुयानों को बचा सकें।

मौसम-विज्ञान तेजी से उन्नति कर रहा है। कुछ वर्षों में मनुष्य मौसम के बारे में लगभग सही भविष्यवाणी करने में समर्थ हो जायगा। इसमें उपग्रह बहुत सहायक होंगे। तब मौसम-समाचार आज की तरह कार्टूनों का विषय नहीं रह जाएंगे।

समाचार और सन्देश भेजने के साधन आज बहुत विकसित हो चुके हैं; इसमें उपग्रहों ने भी काफी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। कुछ ही साल पहले टेलिविजन चित्र ५२ मील से ज्यादा दूर नहीं भेजे जा सकते थे; अब टोक्यो से प्रसारित टेलिविजन कार्यक्रम न्यूयार्क में देखा जा सकता है—यह उपग्रह की कृपा से ही हुआ है।

विश्व के अन्य भागों से प्रेषित टेलिविजन–चित्रों को हम क्यों नहीं देख पाते थे ? बात यह है कि टेलिविजन तरंगें (टी. वी. तरंगें) काफी लंबी होती हैं और सीधी रेखा में चलती हैं। मगर पृथ्वी है गोल, इसलिए ये तरंगें पृथ्वी पर बहुत दूर तक नहीं जा पातीं और इसीलिए टी. वी. चित्र बहुत दूर तक नहीं भेजे जा सकते।

टी. वी. तरंगें रेडियो की तरंगों से भिन्न होती हैं। दूर देशों में जब रेडियो पर समाचार (रेडियो--संदेश) भेजे जाते हैं, तो वे किस प्रकार पृथ्वी की गोलाई के बावजूद ग्रहण किये जा सकते हैं ? सन १९२० में आलिवर हेविसाइड ने यह पता लगाया कि पृथ्वी से करीब ६० मील ऊपर आकाश में एक आयनित स्तर है, जिसे आयन-मंडल कहते हैं। जब रेडियो-तरंगें वहाँ पहुँचती हैं, तो उससे टकराकर पृथ्वी पर वापस आती हैं।

इसी कारण छोटी तरंगें सुदूर देशों में पहुँच जाती हैं। परंतु तरंगों को लौटाने के मामले में आयन–मंडल पर बहुत भरोसा भी नहीं किया जा सकता। टी. वी. तरंग आदि माको-तरंगें भी सीधी रेखा में चलती हैं; परंतु वे आयन--मंडल से टकराकर वापस नहीं लौटतीं, बल्कि उसके पार चली जाती हैं।

इसलिए क्षितिज के पार टी. वी. तरंगों को भेजने केलिए हमें रिपीटर (दोहरानेवाले) स्टेशनों की आवश्यकता पड़ती है। ये स्टेशन काफी ऊँचे टेलिविजन--स्तंभ से प्रसारित की गयी टी. वी तरंगों को पकड़कर फिर से प्रसारित करते हैं। दो रिपीटरों के बीच की दूरी ५० से ८० किलोमीटर तक होती है।

यह व्यवस्था धरती पर कुछ सौ किलोमीटर तक आसानी से काम कर सकती है। परंतु यदि हम पेरिस से न्यूयार्क को टी. वी तरंगें भेजना चाहें, तो यह व्यवस्था काम नहीं दे सकती। क्योंकि इसके लिए हमें ६५० किलोमीटर ऊँची मीनार बनानी पड़ेगी, जो कि असंभव है। यों भी पेरिस और न्यूयार्क के बीच अटलांटिक महासागर पड़ता है, उसमें सैकड़ों रिपीटर स्टेशन बनाना बहुत कठिन और बेहद खर्चीला काम होगा।

लेकिन उपग्रह ये सब समस्याएँ सुलझा देता है। उपग्रह एक तरह से हवा में लटकती हुई मीनार है। उसकी सहायता से कई स्थानों से एक साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है। एक लाभ उसमें यह भी है कि उसका स्थान भी बदला जा सकता है।

संचार-उपग्रह दो प्रकार के होते हैं— १. दोहराने वाले (रिपीटर) २. लौटानेवाले (परावर्तक)। दोहरानेवाले (रिपीटर) उपग्रहों में रेडियो-रिसीवर (ग्राहक) और ट्रांसमीटर (प्रेषक) दोनों रहते हैं। परंतु लौटानेवाले (परावर्तक) उपग्रहों में कोई विशेष उपकरण नहीं होते। उनका काम तो तरंगों को वापस भेजना मात्र है। उनसे वापस आनेवाली ये तरंगें सब दिशाओं में फैल जाती हैं और टेलिविजन सेट उन्हें ग्रहण करते हैं।

कठिन शब्दार्थ

सवाल उठना - प्रश्न उठना। असल में - वास्तव में।

रफ्तार - चाल, गति। सौर ऊर्जा - सूर्य से प्राप्त शक्ति।

फौजी - सैनिक। प्रतिष्ठान - स्थान। जमाना - जड़ मजबूत करना, जमने में सहायक होना। हलचल - दौड़धूप, शोरगुल आदि; खलबली। नौचालन - Navigation, shipping। जुताई - जोतने का काम। बुआई – बोने का काम। तूफान-आंधी। कोहरा - Mist। आयनित – Ironized। माको-तरंग - Mycro waves क्षितिज - horizon। खर्चीला - Expensive। प्रसारित – extended, propagated। प्रेषित – Despatched, transmitted। बेहद – हद से ज़्यादा, असीम।

व्याख्या करें

१. तब मौसम-समाचार आज की तरह कार्टूनों का विषय नहीं रह जाएंगे।

२. उपग्रह एक तरह से लटकती हुई मीनार है।

उत्तर लिखें

१. टेलिमिटरी का संक्षिप्त परिचय दें?

२. भूस्टेशन का क्या उपयोग है?

३. उपग्रह कितने प्रकार के होते हैं। मौसम उपग्रहों के बारे में आप क्या जानते हैं?

४. संचार उपग्रहों का संक्षेप में वर्णन करें।

५. 'उपग्रहों के उपयोग' नामक लेख का सारांश लिखें।

आँगन में बैंगन

हरिशंकर परसाई

श्री हरिशंकर परसाई आधुनिक हिन्दी के शीर्षस्थानीय व्यंग्यकारों में आते हैं। मुख्य रूप से उन्होंने कहानियाँ और निबंध रचे हैं। वर्तमान समय की समाज व्यवस्था, शासन प्रणाली, धर्मसंबधी मान्यताएं आदि से वे अत्यंत असंतुष्ट हैं। इन के सुधार के एक उपकरण के रूप में उन्होंने व्यंग्य को ग्रहण किया है।

अपनी वस्तु के प्रति मोह मनुष्य केलिए बहुत ही स्वाभाविक है। परन्तु जब वह अत्यधिक हो जाता है तो वह हास्य का कारण बनता है। प्रस्तुत ललित निबंध में मुख्य रूप से इसी भाव को स्पष्ट किया गया है। वर्तमान समय की सरकार की शासन प्रणाली की असंगतियों पर भी इस में व्यंग्य किया गया है।

मेरे दोस्त के आँगन में इस साल बैंगन फल आये हैं। पिछले कई सालों से सपाट पड़े आँगन में जब बैंगन फल उठा तो ऐसी खुशी हुई जैसे बाँझ को ढलती उम्र में बच्चा हो गया हो। सारे परिवार की चेतना पर इन दिनों बैंगन सवार है। बच्चों को कहीं दूर पर बकरी भी दीख जाती है, तो वे समझते हैं कि वह हमारे बैंगन के पौधों को खाने के बारे में गंभीरता से विचार कर रही है। वे चिल्लाने लगते हैं। पिछले कुछ

दिनों से परिवार में बैंगन की ही बात होती है। जब भी जाता हूँ, परिवार की स्त्रियाँ कहती हैं—खाना खा लीजिए। घर के बैंगन बने हैं। जब वे 'भरे भटे' का अनुप्रास साधती हैं। तब उन्हें काव्यरचना का आनंद आ जाता है। मेरा मित्र भी बैठक से चिल्लाता है-'अरे भई! बैंगन बने हैं कि नहीं?' मुझे लगता है, आगे ये मुझसे 'चाय पी लीजिए' के बदले कहेंगी—'एक बैंगन खा लीजिए, घर के हैं।' और तश्तरी में बैंगन काटकर सामने रख देंगी। तब मैं क्या करूँगा? शायद खा जाऊँ, क्योंकि बैंगन चाहे जैसा लगे, भावना स्वादिष्ट होगी और मैं भावना में लपेटकर बैंगन की फाँक निगल जाऊँगा।

ये बैंगन घर के हैं और घर की चीज का गर्व विशेष होता है। अगर वह चीज घर में ही बनायी भी गयी हो, तो निर्माण का गर्व उसमें और जुड़ जाता है। मैंने देखा है, इस घर के बैंगन का गर्व स्त्रियों को ज्यादा है। घर और आँगन में जो है वह स्त्री के गर्व के क्षेत्र में आता है। इधर बोलचाल में पत्नी को 'मकान' कहा जाता है। उस दिन मेरा एक दोस्त दूसरे दोस्त को सपत्नीक भोजन के लिए निमंत्रित कर रहा था। उसने पूछा—'हाँ' यह तो बताइए आपका 'मकान' गोश्त खाता है या नहीं? पत्नी अगर 'मकान' कही जाती है, तो पति को 'चौराहा' कहलाना चाहिए। दोनों की पत्नियाँ जब मिलें तो एक का 'मकान' दूसरे के 'मकान' से पूछ सकता है—'बहन, तुम्हारा 'चौराहा' शराब पीता है या नहीं?

लोग पान से लेकर बीबी तक घर की रखते हैं। इसमें

बड़ा गर्व है और बड़ी सुविधा है। जो चाहा तब पान लगाकर खा लिया और जी हुआ तब पत्नी से लड़कर जीवन के कुछ क्षण सार्थक कर लिये। कुछ लोग मूर्ख भी घर के रखते हैं। और मेरे एक परिचित तो जुआड़ी भी घर के रखते हैं। दीवाली पर अपने बेटों के साथ बैठकर जुआ खेल लेते हैं। कहते थे—'भगवान की दया से अपने चार बेटे हैं, सो घर में ही जुआ खेल लेते हैं।'

घर की चीज आपत्ति से भी परे होती है। आदमी स्वर्ग से इसलिए निकाला गया कि उसने दूसरे के बगीचे का सेब खा लिया था। माना कि वह बगीचा ईश्वर का था, पर फिर भी पराया था। अगर वह सेब उसके अपने बगीचे का होता, तो वह एतराज करने वाले से कह देता—'हाँ, हाँ, खाया तो अपने बगीचे का ही खाया। तुम्हारा क्या खा लिया?' विश्वामित्र का 'वैसा' मामला अगर घर की औरत से होता, तो तपस्या भंग न होती। वे कह देते—'हाँ जी, हुआ। अगर वह हमारी औरत है। तुम पूछने वाले कौन होते हो?' अगर कोई अपनी स्त्री को पीट रहा हो और पड़ोसी उसे रोके, तो वह कैसे विश्वास से कह देता है—'वह हमारी औरत है। हम चाहें उसे पीटें, चाहें मार डालें। तुम्हें बीच में बोलने का क्या हक है।' ठीक कहता है वह। जब वह कद्दू काटता है, तब कोई एतराज नहीं करता, तो औरत को पीटने पर क्यों एतराज करते हैं? जैसा कद्दू वैसी औरत। दोनों उसके घर के हैं। घर की चीज में यही निश्चिन्तता है। उसमें मजा भी विशेष है। बैंगन चाहे बाजार के बैंगन

से घटियाँ हों, पर लगते अच्छे स्वादिष्ट हैं। घर के हैं न। मैंने लोगों को भयंकर कर्कशा का भी प्यार करते देखा है, क्योंकि वह घर की औरत है।

वैसे मुझे यह आशा नहीं थी कि यह मेरा दोस्त कभी आँगन में बैंगन का पौधा लगायेगा। कई सालों से आँगन सूना था। मगर मैं सोचता था कि चाहे देर से खिले, पर इस आँगन में गुलाब, चम्पा और चमेली के फूल ही खिलेंगे। बैंगन और भिंडी जैसे भोंड़े पौधे को वह अपने आँगन में जमने नहीं देगा। पर इस साल जो नहीं होना था, वही हो गया। बैंगन लग गया। और वह रुचि से खाया भी जाने लगा। मेरे विश्वास को यह दोस्त कैसे धोखा दे गया। उसने शायद घबरा कर बैंगन लगा लिया। बहुत लोगों के साथ ऐसा हो जाता है। गुलाब लगने के इंतजार में साल गुजारते रहते हैं और फिर घबरा कर आँगन में बैंगन या भिंडी लगा लेते हैं। मेरे एक परिचित ने इसी तरह अभी एक शादी की है—गुलाब के इंतजार से ऊबकर बैंगन लगा लिया है।

लेकिन इस मित्र की सौंदर्य-चेतना पर मुझे भरोसा था। न जाने कैसे उसके पेट से सौंदर्य--चेतना प्रकट हो गयी। आगे हो सकता है, वह बेकरी की स्थापत्यकला का श्रेष्ठ नमूना मानने लगे और तन्दूरी रोटी की भट्टी में उसे अजंता के गुफा-चित्र नजर आयें।

इसे मैं बर्दाश्त कर लेता। बर्दाश्त तब नहीं हुआ, जब परिवार की एक तरुणी ने भी कहा—'अच्छा तो है। बैंगन खाये भी जा सकते हैं'। मैंने सोचा, हो गया सत्यानाश। सौंदर्य,

कोमलता और भावना का दिवाला पिट गया। सुंदरी गुलाब से ज्यादा बैंगन को पसंद करने लगी। मैंने कहा—'देवी, तू क्या उसी फूल को सुंदर मानती है जिसमें से आगे चलकर आधा किलो सब्जी निकल आए। तेरी जाति कदंब के नीचे खड़ी होने वाली है, पर तू शायद हाथ में बांस लेकर कटहल के नीचे खड़ी होगी। पुष्पलता और कद्दू की लता में क्या तू कोई फर्क नहीं समझती? तू क्या बंशी से चूल्हा फूंकेगी? और क्या बीणा के भीतर नमक-मिर्च रखेगी।

तभी मुझे याद आया कि अपने आँगन में तो कुछ भी नहीं है। दूसरे पर क्या हँसू? एक बार मैंने गेंदे का पौधा लगाया था। यह बड़ा गरीब, सर्वहारा फूल होता है। कहीं भी जड़ें जमा लेता है। मैंने कहा—'हुजूर अगर आप जम जाएं और खिल उठें, तो मैं गुलाब लगाने की सोचूं। मगर वह गेंदा भी मुरझाकर सूख गया। उसका डंठल बहुत दिनों तक जमीन में गड़ा हुआ मुझे चिढ़ाता रहा कि गेंदा तो आँगन में निभ नहीं सका, गुलाब रोपने की महत्त्वाकांक्षा रखते हो। और मैं उसे जवाब देता 'अभागे, मुझे एसा गेंदा नहीं चाहिए जो गुलाब का नाम लेने से ही मुरझा जाय। गुलाब को उखाड़ कर वहां जम जाने की जिसमें ताकत हो, ऐसा गेंदा मैं अपने आँगन में लगने दूंगा। मेरे घर के सामने के बंगले में बनी मेंहदी की दीवार-सी उठी है। इसकी टहनी कहीं भी जड़ जमा लेती है। इसे ढोर भी नहीं खाते। यह सिर्फ संबरियों की हथेली की शोभा बढ़ाती है

और इसीलिए इस पशु तक केलिए बेकार पौधे की रूमानी प्रतिष्ठा लोक-गीतों से लेकर नयी कविता तक में है। नेल-पालिश के कारखानों ने मेंहदी की इज्जत अलबत्ता कुछ कम कर दी है। तो मैंने मेंहदी की कुछ कलमें आँगन में गाड़ दीं। दो-तीन दिन बाद आवारा ढोरों ने उन्हें रौंद डाला। मैं दुखी था। तभी अखबार में पढ़ा कि किसी 'डाइड्रो इलेक्ट्रिक प्लांट' का पैसा इंजीनियर और ठेकेदार खा गये और उसमें ऐसी घटिया सामग्री लगायी कि प्लाण्ट फूट गया और करोड़ों बरबाद हो गये। जो हाल मेरे मेंहदी के 'प्लांट' का हुआ, वही सरकार के उस बिजली के 'प्लांट' का हुआ—दोनों को उजाड़ू ढोरों ने रौंद डाला। मैंने इस एक ही अनुभव से सीख लिया कि 'प्लांट' रोपना हो तो उसकी रखवाली का इंतजाम पहले करना। भारत सरकार से पूछता हूँ कि मेरी सरकार आप कब सीखेंगी? मैं तो अब 'प्लांट' लगाऊँगा, तो पहले रखवाली केलिए कुत्ते पालूँगा। सरकार की मुश्किल यह है कि उसके कुत्ते वफादार नहीं हैं। उनमें से कुछ आवारा ढोरों पर लपकने के बदले, उनके आसपास दुम हिलाने लगते हैं।

फिर भी भारत सरकार के प्लांट तो जम ही रहे हैं और आगे जम जायेंगे। उसके आँगन की जमीन अच्छी है और। 'प्लांट' सींचने को ४५ करोड़ लोग तैयार हैं। वे प्लांट भी उन्हीं के हैं। सरकार तो सिर्फ मालिन है।

मेरे इस आँगन का अभी कुछ निश्चित नहीं है। बगल के मकान के अहाते से गुलाब की एक टहनी, जिस पर बड़ा-स

फूल खिलता है, हवा के झोंके से दीवार पर से गर्दन निकाल कर इधर झाँकती है। मैं देखता रहता हूँ। कहता हूँ—'तू ताक चाहे झाँक। मैं इस आँगन में अब पौधा नहीं रोपूँगा। यह अभागा है। इसमें बरसाती घास के सिवा कुछ नहीं उगेगा। सभी आँगन फूल खिलने लायक नहीं होते'। 'फूलों का क्या ठिकाना'। वे गँवारों के आँगन में भी खिल जाते हैं। एक आदमी को जानता हूँ, जिसे फूल सूँघने की तमीज नहीं है। पर उसके बगीचे में तरह-तरह के फूल खिले हैं। फूल भी कभी बड़ी बेशर्मी लाद लेते हैं और अच्छे खाद पर बिक जाते हैं।

मेरा एक मित्र कहता है कि 'तुम्हारे आँगन में कोमल फूल नहीं लग सकते। फूलों के पौधे चाहे किसी घटिया तुकबंद के आँगन में जम जायँ, पर तुम्हारे आँगन में नहीं जम सकते। वे कोमल होते है, तुम्हारे व्यंग्य की लपट से जल जायेंगे। तुम तो अपने आँगन में बबूल, भटकटैया और धतूरा लगाओ। ये तुम्हारे बावजूद पनप जायेंगे। फिर देखना कौन किसे चुभता है—तुम बबूल को या बबूल तुम्हें? कौन किसे बेहोश करता है—धतूरा तुम्हें या तुम धतूरे को।

कठिन शब्दार्थ

भोंडा - भद्दा। तंदूरी रोटी - तंदूर (मिट्टी का बड़ा पात्र) में बनी हुई रोटी। सर्वहारा - साधारण। कलम - पेड़ की टहनी जो दूसरी जगह लगाने केलिए काटी जाय।

व्याख्या करें

१. आदमी स्वर्ग से इसलिए निकाला .... बनाया था।

२. सरकार की मुश्किल यह है कि उसके कुत्ते .... दुम हिलाने लगते हैं।

३. फिर देखना कौन किसे चुकता है...धतूरे को।

उत्तर लिखें

१. 'आंगन में बैंगन'' में अभिव्यक्त भावना कौन सी है ? इस में बैंगन किस भावना का प्रतिनिधित्व करता है ?

२. इस में लेखक ने किन किन बातों अथवा प्रसंगों पर व्यंग्य किया है।

३. इस में लेखक मुख्य रूप से क्या समझाना चाहते हैं ?

झींगुर

श्री विनोद प्रभाकर

[हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की प्रगति हो रही है। अनेक वैज्ञानिक हिन्दी में लिखने लगे हैं। भारतीय भाषा यूनिट वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद की ओर से प्रकाशित 'विज्ञान प्रगति' पत्रिका इस उद्देश्य की पूर्ति करती है। प्रस्तुत लेख 'विज्ञान प्रगति' के बाल विशेषांक से लिया हुआ है।]

वर्षा के शुरू होते ही बादलों की उमड़-घुमड़ और बिजली की कड़क सुनाई पड़ते ही बहुत से जीव-जन्तु आनंदित हो कर अपनी मदमस्त तानें छोड़ देते हैं। 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' तथा कुहू-कुहू की सुरीली आवाज़ें वातावरण में रस घोल देती हैं। ऐसे में मेढ़कों की टर्र-टर्र और झींगुरों की झंकार बिल्कुल अलग होती है और एक अलग ही 'रस' की सृष्टि करती है। गोस्वामी तुलसीदास ने तो मेंढ़कों की आवाज़ के बारे में लिखा है—'बेद पढ़हिं जब बटु समुदाई' अर्थात मेंढ़कों की आवाज़ ऐसी लगती है मानों ब्राह्मणों के समूह वेद पाठ कर रहे हों।

बरसात में झींगुरों की भरमार हो जाती है। उस समय इनकी आवाज अक्सर सुनाई पड़ती रहती है। आवाज़ तेज होती है तो कानों को अच्छी नहीं लगती। हाँ मन्द आवाज

को सुनने में संगीत का सा आनन्द अवश्य आता है। अपने इस फन में झींगुर माहिर होता है। वह आवाज के स्वर को इस सीमा तक नियंत्रित कर लेता है कि पता ही नहीं चलता कि ध्वनि कहाँ और किस दिशा से आ रही है। सुननेवाला उसकी कला से चाहे कितना ही परेशान होता रहे ये महाशय घर के कोने में छिपे अपनी 'संगीत कला का अभ्यास' करते रहते हैं।

संगीत की तेज और धीमी आवाज झींगुर अपनी टांगों को एक दूसरे से रगड़कर पैदा करता है। दर असल इनकी टांगें रेती की तरह दाँतेदार होती हैं और सारंगी के गज का काम करती हैं। जिस समय इसे अपनी तान छेड़नी होती है यह अपने पैरों को आगे-पीछे करना शुरू कर देता है। इससे पैरों की रेती के दांत एक दूसरे, से रगड़ खाते हैं और आवाज पैदा होती है। स्वर का नियंत्रण यह अपने शरीर की दिशा बदल-बदलकर करता है। अपने स्वर को यह एकदम से नहीं चढ़ाता, बल्कि शहनाई की तरह धीरे-धीरे बढ़ाता है और फिर तान नहीं तोड़ता। अपने पैरों के सारंगीवादन में झींगुर किसी भी कुशल से कुशल सारंगीवादक से कम नहीं होते। पर झींगुर की ऐसी बहुत सी किस्में हैं जो आवाज पैदा ही नहीं कर सकतीं। वैज्ञानिकों के अनुसार झींगुर की ३०० से भी अधिक अलग-अलग किस्में (स्पीशिज) हैं। इन सबके मूंछों के बाल (एन्टेना) लम्बे और पिछली टांगों मजबूत होती हैं। एक अमेरिका जीव-वैज्ञानिक के अनुसार तो झींगुर 'संवाद' भी बोलते हैं। अगर इनको ध्यान से सुना जाए तो इनके स्वर के उतार-चढ़ाव से पता चल सकता है, ये किस स्थान के निवासी हैं।

झींगुर की लम्बाई आध इंच से डेढ़ इंच तक होती है और शरीर चपटा होता है। इसका सिर बड़ा और शरीर का रंग मटमैला-भूरा होता है। अगले परों का कुछ हिस्सा तो पीठ पर फैला और कुछ पेट में चिपका रहता है। अगली टांगों के ऊपरी भाग पर टिड्डियों की तरह सुनने के अंग होते हैं। पीठ के पिछले हिस्से में दुम की तरह दो अंग निकले होते हैं। पिछली टांगें थोड़ी लम्बी रहती हैं जिनसे यह मेंढ़क की तरह कूद-कूद कर चलता है।

झींगुर घास-पात और छोटे मोटे कीड़े खानेवाला जीव है। इसके रहने का कुछ निश्चित ठिकाना नहीं। कुछ गहरा बिल खोदकर रहते हैं तो कुछ अपना डेरा पेड़ों और झाड़ियों के बीच रखते हैं। बिल बनाकर रहनेवाले झींगुर अक्सर शाकाहारी होते हैं। झाड़ी के बीच रहनेवाले झींगुर छोटे कीड़े खाकर भी अपना गुजारा कर लेते हैं। वे ज्यादातर रात को बाहर निकलना पसन्द करते हैं।

झींगुर फसल को बहुत नुकसान पहुंचा सकता है। अमेरिका के ऊटा प्रदेश में एक बार झींगुरों ने इतनी फसल नष्ट कर दी कि अकाल पड़ने का खतरा हो गया।

ये घरों में आ जाते हैं। तस्वीर, अल्मारी, संदूक और दूसरे सामानों के पीछे, जहां गंदगी रहती है ये अपना अड्डा जमा लेते हैं और अक्सर कपड़े, चमड़े आदि की चीजों का सफाया करके काफी नुकसान पहुंचाते हैं।

झींगुर प्रायः सभी जगह पाए जाते हैं। सारी दुनियां में इनकी अनेक जातियां फैली हुई हैं। हमारे यहां इनकी

मुख्यतः दो जातियाँ दिखाई पड़ती हैं; एक काला और दूसरा भूरा झींगुर। इनमें रंग और कद में थोड़ा फर्क जरूर होता है, पर आदतें एक जैसी होती हैं। काला झींगुर भूरे से कुल मोटा होता है।

चीन में तो पहले से ही झींगुरबाजी को एक राष्ट्रीय खेल माना जाता रहा है। पहले वहाँ बढ़िया नस्ल के झींगुर पाले और सधाये जाते थे। उनकी 'शिक्षा' और खाने का पूरा ध्यान रखा जाता था जिससे वे लड़ते समय अखाड़े में अपने प्रतिद्वन्द्वी को 'चित' करके छोड़ें, खुद न खा जाएं। समझा जाता है कि बर्मा आदि देशों में तो इनको बड़े चाव से खाया भी जाता है।

कठिन शब्दार्थ

उमडना घुमडना - घूम घूम कर फैलना। कड़क - कड़कड़ाहट का शब्द, वज्र, तड़प, दपेट। छेड़ देना - कोई काम आरंभ करना बजाने के लिए बाजे में हाथ लगाना। भरमार - बहुत ज्यादा, अत्यन्त अधिकता। फन - गुण, विद्या, खूबी। महिर - निपुण, कुशल। दर असल - वास्तव में, सचमुच। शहनाई- एक तरह का बाजा जिसका उत्तर भारत में उपयोग किया जाता है। किस्म - प्रकार, भेद, ढंग, चाल, तरह। चपटा होना - बैठा या धंसा हुआ। टिड्डी - एक प्रकार का उड़नेवाला कीड़ा जो लाखों की संख्या में बहुत बड़ा दल बांधकर चलता है और पेड़- पौधों को बड़ी हानि पहुँचाती है। बिल – ज़मीन के अन्दर खोदकर बनाया हुआ जीवंतत्तुओं के रहने का स्थान, विवर छेद।

डेरा – पड़ाव, टिकाव। अकाल - दुर्भिक्ष, दुष्काल, अनुपयुक्त समय। खतरा – भय, आशंका। अड्डा – ठहरने (टिकने) का स्थान। भूरा रंग – मिट्टी का सा रंग, खाकी रंग। नस्ल – वंश, जाति।

व्याख्या करें

१. 'पी कहाँ' 'पी कहाँ' तथा कुहू–कुहू की सुरीली आवाज़ें वातावरण में रस घोल देती हैं।

२. गोस्वामी तुलसीदास ने तो मेंढकों की आवाज के बारे में लिखा है– 'वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई' अर्थात मेंढकों की आवाज़ ऐसी लगती है मानो ब्राह्मणों के समूह के समूह वेद पाठ कर रहे हों।

३. अगर इनको ध्यान से सुना जाए तो इनके स्वर के उतार-चढ़ाव से पता चल सकता है, ये किस स्थान के निवासी हैं।

हम हिन्दुस्तानी बनें

श्रीमन्नारायण

[श्रीमन्नारायण गांधीजी के अनुयायी है। गांधीवाद के विशेषज्ञों में उनकी गणना है। भारत की एकता और उन्नति केलिए वे निरंतर प्रयत्नशील रहे हैं। हिन्दी साहित्य के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण हैं। बड़े नेता और राजनीतिक कार्यकर्ता के रूप में भी उन्होंने यश पाया है।

उन्होंने इस निबंध में हमें समझाया है कि विदेशी सभ्यता और संस्कृति का अंधानुकरण करने से भारत की अवनति हो रही है। पश्चिमी सभ्यता के अच्छे पहलुओं को हम स्वीकार कर सकते हैं। लेकिन भारतीयता को हमें कभी भी नहीं छोडना चाहिए। यही उनका सन्देश है। उन की भाषा प्रसादगुण से युक्त है]

हम ने पश्चिम के देशों की बहुत दिन तक नकल कर ली है। हमने उनके रहन, सहन आचार-विचार का बहुत अनुकरण किया है। अपनी भाषा को भूलकर विदेशी भाषा को दिल खोल कर अपनाया है। अपने देश के गौरव को नीचा समझकर दूसरे देशों की ओर लोभ की नजर से देखा है। मगर अब हमें अपना ढंग बदलना होगा। हमें अपने जीवन को दूसरे सांचे में ढालना होगा। हम को दूसरे लोगों की नकल करना छोड़कर अपनेपन ढुंढना होगा। अपने देश के गुणों को समझकर उन्हें अपने जीवन

का भाग बनाना होगा। अगर थोड़े में कहा जाय, तो हमें हिन्दुस्तानी बनना होगा।

इसका यह मतलब नहीं कि हम दूसरे देशों से घृणा करने लगें और उनकी अच्छी अच्छी बातों को प्राप्त करने की कोशिश न करें। इसका यह भी मतलब नहीं कि हम अपने देश की बुराइयों को भी अच्छा समझ कर उन्हें सुधारने का प्रयत्न न करें। ऐसा करने से तो हम अपने आपको और अपने देश को बरबाद कर देंगे। हिन्दुस्तानी बनने के ये अर्थ हैं कि हम अपने रीति-रिवाजों को, आचार-विचारों को पूर्ण रूप से समझने की कोशिश करें। मगर अपनी सँस्कृति या तहजीब को भूल कर या निकम्मी समझ कर दूसरे देशों की नकल करते-करते अपनेपन को न खो बैठें।

दुनियाँ की हर एक वस्तु में कुछ-न-कुछ विशेष गुण होता है। यह बात, आदमी तो आदमी, जानवरों और पौधों में भी पाई जाती है। यह अच्छी भी है। अगर एक बाग में सभी फूल एक-से ही हों, तो कुछ शोभा न रहेगी। मगर बगीचे में तरह तरह के फूल हों तभी हर एक फूल अपनी अपनी निराली खुशबू फैलाकर लोगों को खुश करता है। इस तरह हर एक देश की सभ्यता या तहजीब में कुछ-न-कुछ खास गुण होता है। उसका विकास करना जरूरी है। नहीं तो इसका यह मतलब हो जाता है कि उस देश के निवासी ईश्वर के दिये हुए गुण को ठुकराते हैं। हमारे हिन्दुस्तान में भी कुछ खास गुण पाये जाते हैं। उन्हें समझकर

उनकी उन्नति करना और उन गुणों को अपने जीवन का भाग बना लेना हर एक हिन्दुस्तानी का कर्तव्य है। हम दूसरे देशों के अच्छे गुणों को भी जरूर अपनाने की कोशिश करें, मगर अपने देश के गुणों को तो न भूलें।

'हम हिन्दुस्तानी बनें' यह सन्देश हमें हिन्दुस्तान के हर एक बच्चे, जवान और बूढ़े तक पहुंचाना चाहिए। हम गुलामी के कारण अपने आपको और जातियों से नीचा समझने लगे हैं। इसलिए अब आजाद होकर हमें सब से पहले अपने मन और हृदय को दीनता के गड्ढे से निकालना होगा।

हम गावों की पुरानी बातें छोड़कर पश्चिम के देशों की ओर जा रहे हैं। अपने हाथों से काम करने के बजाय मशीनों के दीवाने हो गये हैं। आखिर इन सब बातों का फल क्या होगा? वही जो आज यूरोप में हो रहा है खून की नदियाँ बहाकर मनुष्यों की भयंकर बरबादी!

हम अपनी भाषाओं को तुच्छ समझकर अंग्रेजी के दीवाने हो गये हैं। अंग्रेजी में ही हम आपस में बोलना पसन्द करते हैं, चाहे कितनी ही भद्दी अंग्रेजी क्यों न बोली जाय। अंग्रेजी भाषा अच्छी है, उस में साहित्य भी अच्छा है। मगर इसका यह मतलब नहीं हम अपनी मातृभाषा या राष्ट्र-भाषा की जगह अंग्रेजी को ही सीखने की कोशिश करें। ऐसा न कभी हुआ है, और न हो सकता है। अगर हम अंग्रेजी को जरूरत से ज्यादा अपनाने का इरादा न छोड़ेंगे, तो हम संसार के सामने अपनी मूर्खता का ही प्रदर्शन करेंगे।

हम एक बडी जाति के छोटे आदमी हैं, हमने अपने देश को अपनी सहूलियत केलिए छोटे छोटे टुकडों में बांट लिया है। जात-पांत और धर्म के हिसाब से हम बहुत से हिस्सों में बंट गये हैं। मगर यह ढंग स्वाधीनता बनाये रखने केलिए ठीक नहीं हो सकता। हमको भूल जाना होगा कि कौन ब्राह्मण है और कौन हरिजन है, कौन हिन्दू है और कौन मुसलमान या ईसाई है। हम न भूलें कि इस देश का हर एक निवासी पहले हिन्दुस्तानी है, बाद में हिन्दू, मुसलमान ब्राह्मण या शूद्र है। अगर हम ऐसा न कर सके तो हमको स्वतंत्र रहने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। फिर हिन्दुस्तान को एक देश कहना भी भूल होगा।

इसलिए हमें चाहिए कि हम सब हिन्दुस्तानी बनने का यत्न करें।

कठिन शब्दार्थ

ढंग बदलना - रीति बदलना। दूसरे सांचे में ढालना - दूसरा आकार देना। बरबाद करना - नष्ट करना, ।तहजीब - सभ्यता। निकम्मा - useless। सहूलियत - सुविधा।

व्याख्या करें

१. आखिर इन सब बातों .... भयंकर बरबादी।

२. हम को भूल जाना ... शूद्र है।

उत्तर लिखें

१. पश्चिम का अनुकरण करने के संबंध में लेखक के क्या विचार हैं ? संक्षेप में लिखें।

२. मातृभाषा या राष्ट्रभाषा के स्थान पर अंग्रेज़ी को प्रतिष्ठित करने से क्या हानि हो सकती है ?

३. इस निबंध का मूल संदेश क्या है ?